Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वैदिक समाजवाद

न-ज्ञान-प्रकाशन, नई दिल्ली-५

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

प्रकाशक—

जन-ज्ञान-प्रकाशन

१५९७ हरध्यानसिंह मार्ग
करौल बाग, नई दिल्ली-५

दूरभाष ५६६६३९

लेखक

श्री पं० वीरसेन वेदश्रमी

मूल्य ८० पैसे

शिवरात्रि संवत् २०२८



—लेखक—

यह पुस्तक 'वैदिक-सम्पदा' नामक अनुपम ग्रन्थ का केवल एक अध्याय है। प्रभु कृपा हुई तो पूर्ण ग्रन्थ भी पाठकों को भेंट कर सकेंगे।

—सम्पादक

मुद्रक—प्रकाशक—संपादक पंडिता राकेश रानी द्वारा सैनी प्रिन्टर्स दिल्ली में मुद्रित।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

आज सर्वत्र समाजवाद की चर्चा है किन्तु इस वाद का आधारभौतिक होने का परिणाम मनुष्य की अपनी पराधीनता के रूप में प्रगट हो रहा है।

समाज का निर्माण जिस से होता है वह है "व्यक्ति"। व्यक्ति अच्छा तो समाज अच्छा, व्यक्ति बुरा तो समाज भी वैसा ही होगा। व्यक्ति का निर्माण करने वाली शक्ति है "धर्म"। धर्म ही में व्यक्ति को मनुष्य बनाने का बल है। इसलिए धर्म द्वारा निर्मित व्यक्ति द्वारा जिस समाज का गठन होता है, उसे "वैदिक-समाजवाद" की संज्ञा दी जा सकती है।

किन्तु धर्म शून्य "समाजवाद" में व्यक्ति गौण और समाज प्रमुख होता है। समाज के वे व्यक्ति नेता बन बैठते हैं जिन के हाथ में भौतिक बल अधिक होता है। ये व्यक्ति समाजवाद के नाम पर व्यक्ति की स्वतन्त्रता और विचार शक्ति को नष्ट कर उसे धन कमाने का एक पुर्जा मात्र बना देते हैं। परिणाम-स्वरूप जीवन का सत्य तम की छाया से ग्रस्त हो अपनी शांति और आनन्द को समाप्त कर देता है।

जीवन क्या है? जीवन का लक्ष्य क्या है? हमारे जीवन का कार्यक्रम क्या है? यह बातें आधार हैं व्यक्ति का। और बिना इन्हें सुलझाए चाहे समाजवाद हो या साम्यवाद, राष्ट्रवाद हो या अधिनायकवाद, जनतन्त्र हो वा राज्यतन्त्र सब का परिणाम एक ही है, अशान्ति का जन्म—

गरीबी, अमीरी, सुख, दुःख, उन्नति, प्रगति की परिभाषा क्या हैं? धन, संपत्ति और उत्कर्ष का प्रतीक क्या है? इन सब बातों को समझने के लिए जिस 'ज्ञान' की आवश्यकता है उस का प्रशिक्षण आज कहीं भी तो नहीं दिया जा रहा।

यही कारण है कि भौतिक उन्नति की सीमाएं लांघने पर भी मनुष्य अपनी शाँति के लिए तरस रहा है। आधुनिक सभी वाद मनुष्य के शरीर को केन्द्र और सत्य मानकर चलते हैं और "वैदिक-समाजवाद" शरीर के सत्य "आत्मा" के आनन्द के केन्द्र बिन्दु की खोज करता है।

प्रस्तुत पुस्तक में पं० वीरसेन जी ने पर्याप्त श्रम कर समाजवाद के वैदिक स्वरूप का चित्रण किया है। वैसे तो यह एक अध्याय है उस विशाल ग्रंथ का जिसे स्व० डॉ० संपूर्णानन्द जी राज्यपाल राजस्थान की प्रेरणा से पंडित जी ने लिखा था। ग्रंथ में वैदिक ज्ञान का सार निहित है। प्रभु चाहेंगे तो पूर्ण ग्रंथ भी प्रकाशित कर सकेंगे।

जन मन में सच्चे समाजवाद की स्थापना का अंकुर उगे, इस पुनीत कामना के साथ हम यह पुस्तक आप की सेवा में अर्पित करते हैं—

—भारतेन्द्र नाथ

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वैदिक समाजवाद में

हों विचार समान सब के,
चित्त मन सब एक हों।
ज्ञान सब को ही मिले सब
सौख्य पा सब एक हों॥

★

हों सभी के मन तथा,
संकल्प अविरोधी सदा।
मन भरे हों प्रेम से,
जिस से बढ़े सुख संपदा॥

★

धन हमें जो प्राप्त हो वह,
हम उसे कर दें समर्पित।
जो मिले सौभाग्य हम को,
बांट दें सब सौख्य संचित।

★

ज्ञान अपना, शक्ति अपनी,
भावनाएँ, पुण्य अपना।
सब हमारा सर्व हित हो,
सर्व मय हो सौख्य सपना॥

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वैदिक समाजवाद

ब्रह्म में समाजवाद का दर्शन

समाजशास्त्र ही मानव धर्म है अथवा मानव धर्म का ही अपर पर्यायवाची शब्द समाजशास्त्र है। इस विशाल ब्रह्माण्ड का संगठन एक परिवार के रूप में है। परमात्मा उसका स्वामी है। संसार की विविध शक्तियाँ उसके अंग रूप हैं। वेद ने इसे निम्न रूप में वर्णित किया है—

यस्य सूर्यश्चक्षुश्चन्द्रमाश्च पुनर्नवः।
अग्निं यश्चक्र आस्यं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः॥

(अथर्व० कां० १०। सू० ७। मं० ७३)

जिस महान्, विराट् ब्रह्म के सूर्य एवं चन्द्र नेत्र तुल्य हैं, अग्नि मुख तुल्य है, उस परब्रह्म को हमारा श्रद्धापूर्ण अभिवादन है। इस प्रकार इस मन्त्र द्वारा वेद ने सृष्टि के जड़ पदार्थों का एक विराट् ब्रह्म के शरीर रूप में वर्णन किया है। यह सृष्टि का समाजवाद है। समाजवाद में विभिन्न व्यक्ति अपनी-अपनी योग्यता एवं पात्रता के आधार पर अपना-अपना कार्य एवं जीवन-निर्वाह करके समाज के एक विशाल जीवन में एक-दूसरे के अंगांगी बन कर, एक-दूसरे के सहयोगी बन कर एवं एक-दूसरे के पूरक बन कर कार्य करते हैं। उसी प्रकार सृष्टि में भी अग्नि, वायु, जल, पृथिवी, सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र तथा अनेक सूक्ष्म शक्तियाँ एवं तत्त्व क्रमपूर्वक कार्य कर रहे हैं। मनुष्य अपनी मर्यादाएँ तोड़ देता है। वह अपने नियमों को भंग कर देता है, परन्तु सृष्टि के तत्त्व अपनी मर्यादा एवं नियमों को भंग नहीं करते। यह सृष्टि अपने सुदृढ़ समाजवादी नियमों पर चल रही है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ब्रह्म से मानव समाजवाद

वेद ने जड़ जगत् में समाजवाद का दर्शन जहाँ कराया है, वहाँ चेतन जगत् में—मानव जगत् में भी समाजवाद की व्याप्ति बताने के लिए मानव को अपने शरीर में अंग रूप से प्रतिपादित करके एक संगठन में रहकर समाजवाद की प्रेरणा निम्न मन्त्र में दी है—

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत् बाहू राजन्यः कृतः ।
ऊरु तदस्य यद् वैश्यः पद्भ्याँ शूद्रो अजायत ॥

(यजुः० अ० ३१ । मं० ११)

मानव समाज में ब्राह्मण वृत्ति के व्यक्ति जो विद्यादि में ही विशेष यत्नशील रहते हैं, वे उस विराट्पुरुष के या पुरुष-समाज के मुख तुल्य हैं। जो क्षत्रिय अर्थात् रक्षणादि क्रिया में विशेष रूप से संलग्न रहने वाले एवं रुचि रखने वाले हैं, वे बाहु के तुल्य हैं। जो व्यक्ति या वर्ग विशेष व्यापार, व्यवसायादि में विशेष प्रयत्नशील हैं, वे जंघाओं के तुल्य हैं और जो ब्राह्मणों, क्षत्रियों एवं वैश्यों को अपनी शारीरिक सेवा में अर्पित करके उन्हें अपने-अपने मुख्य प्रयत्नों में संलग्न रहने के लिए अधिकाधिक सुअवसर प्रदान करते हैं, ऐसे व्यक्ति उस परब्रह्म के एवं समाज के आधार स्तम्भ रूप पाद तुल्य हैं।

इस प्रकार वेद ने जड़ एवं चेतन में, मानव में, मानव के वर्गीकृत प्रयत्नों में शरीर एवं उसके अभिन्न अंगों की स्थिति प्रतिपादित करके एक समाजवाद के निर्माण का उपदेश किया है। सृष्टि में और उसके रचयिता में जब समाजवाद है, तो सृष्टि के समस्त पदार्थों के जीवन में भी समाजवाद ही है। उसका दर्शन पशु-पक्षियों में भी होता है।

पशु-पक्षियों में समाजवाद

गौ, बकरी, भेड़ आदि पशुओं में, शुक, कपोत, मधुमक्खी, क्रौंच आदि पक्षियों में एवं चींटी, चींटे, दीमक आदि अतिक्षुद्र प्राणियों में समूह में रहने की अति प्रबल भावना है। क्रौंच पक्षियों में पंक्ति में उड़ना, चींटियों का एवं चींटों का स्वच्छ मार्ग-निर्माण करके

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पंक्तिबद्ध चलना और अपने खाद्य को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाना और संग्रह करना, मधुमक्खियों का अपने सुन्दर निवास का निर्माण, उनमें शिशु-जनन एवं मधु का संचय एक विलक्षण अनुशासन एवं कला का द्योतक है।

मोर का नृत्य, कोयल का मधुर कूजन, बया आदि पक्षियों का सुन्दर कलापूर्ण घोंसलों का निर्माण, दीमकों का अनेक मंजिलों वाले कलापूर्ण गृह का निर्माण, पशुओं का अपनी गुफाओं का, चिड़ियों का तथा पक्षियों का अपना आवास स्थान निर्माण, मकड़ियों का सुन्दर जाल-निर्माण, रेशम के कीड़ों का सुन्दर तन्तु-निर्माण, सर्प का सुन्दर केंचुली परिधान तथा उसका परित्याग, तितलियों की विविध वर्ण युक्त साज-सज्जा, सीप, शंख मोती आदि का अपने-अपने दुर्ग में निवास तथा इन सब का अपने निवास, भोजन, रक्षा, आक्रमण, गमनागमन आदि के कार्य समाजशास्त्र के परिचायक हैं।

समाजवाद ही मानव धर्म

परमात्मा की सष्टि से समाजशास्त्र के बारे में हम बहुत कुछ सीख कर अपने समाजशास्त्र का निर्माण कर सकते हैं। मनुष्य भी सामाजिक प्राणी है। बिना समाज के इसका निर्वाह नहीं हो सकता और न इसके ज्ञान-विज्ञान कला-कौशल एवं सभ्यता-संस्कृति का ही विकास हो सकता है। यही समाज-व्यवस्था मानव धर्म के विकास का प्रमुख अंग है। अतः मनुष्य को इस मानवधर्म का पालन करना चाहिए और इसका विकास करते रहना चाहिए।

विकसित मानव से ही विकसित मानव-समाज का निर्माण होगा और विकसित मानव-समाज से मानव के व्यक्तित्व का विकास होगा। अतः यह मानवधर्म परमावश्यक है। इसीलिए वेद ने समाज का प्रथम सूत्र-मन्त्र हमें निम्न दिया—

'मनुर्भव' (ऋ० १०।५३।६)

अर्थात् ऐ मनुष्य ! तू इस मानव देह को प्राप्त कर मनुष्य बन, मननशील बन।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

संस्कृति एवं सभ्यया का जीवन से उद्गम

जिन मनुष्यों में जितनी ही अधिक उत्तम सामाजिक भावनाएं जाग्रत् की जायेंगी, उनमें उतना ही उत्तम सामाजिक जीवन विकसित हो सकेगा। सामाजिक जीवन व्यक्तिगत जीवन के अनुरूप विकसित होता है। व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन के निरन्तर प्रवाह में संस्कृति एवं सभ्यता का विकास होता जाता है।

वेद ने संस्कृति के विकास के मूलमन्त्र का उपदेश दिया कि विद्या, धन, ऐश्वर्य का दूसरों को दान, उससे श्रेष्ठ भावना, परस्पर मित्रता, जीवन, उन्नति, गति होती है।

समाजवाद का द्वितीय सूत्र-मन्त्र—(२)

अच्छिन्नस्य ते देव सोम सुवीर्यस्य रायस्पोषस्य ददितारः स्याम।
सा प्रथमा संस्कृतिर्विश्ववारा स प्रथमो मित्रो वरुणो अग्निः॥

(यजु० अ० ७। मं० १४)

अर्थात् हे सौम्य गुणयुक्त, हे सर्व ऐश्वर्य के केन्द्र परमात्मन्! आपने इस सृष्टि में जो विविध ऐश्वर्य भर रखा है और उसके उपयोग लेने की हमें बुद्धि एवं सामर्थ्य दी है, उसके द्वारा हम तेरे उस ऐश्वर्य, विद्या, धन एवं कल्याण के निरन्तर प्रवाह रूप से देने वाले हों। हम में यह स्वार्थवृत्ति न जाग्रत् हो कि संसार का ऐश्वर्य, धन, विद्या, कल्याण पथ हमारे ही लिए है। यह सब को देने के लिए है। सभी इसके अधिकारी हैं, यही सर्वप्रथम सब को ग्राह्य करने योग्य संस्कृति—नीति है। यही भावना सर्वप्रथम सबको मित्र बनाने की है, श्रेष्ठ बनाने की है और जीवन तथा गति देने वाली है।

जीवन व्यवहार से संस्कृति एवं सभ्यता का प्रवाह

सभ्यता का सम्बन्ध बाह्य वातावरण एवं व्यवहार से होता है। उसमें देश, काल, परिस्थिति एवं आवश्यकतानुसार शीघ्र परिवर्तन होते रहते हैं। परन्तु जिस मूल विचार या परम्परा के आश्रित अथवा जिन दार्शनिक मान्यताओं के आधार पर सभ्यता अपने मूल

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

उद्गम से प्रेरणा प्राप्त कर अपना अस्तित्व बनाये रखती है, वह संस्कृति है। जिस प्रकार नदी अपने उद्गम स्थान से प्रवाहित होकर आगे विशाल क्षेत्रों को सिंचित एवं पल्लवित करती रहती है, उसी प्रकार सभ्यता का जो उद्गम स्थल है, वह कालान्तर में संस्कृति संज्ञक हो जाता है और उसमें प्राचीन परम्परा एवं विचारों का अजस्र प्रवाह एवं पवित्रता सभ्यता को प्राप्त होती रहती है तथा उस सभ्यता से समाज का जीवन-व्यवहार चलता है।

उच्च संस्कृति एवं सभ्यता के लिए

परमात्मा की मान्यता

सामाजिक उच्च भावनाएँ जो वेद में प्रतिपादित हैं, वे बहुत ही उत्तम हैं और उन पर आरूढ़ होकर विश्व वास्तव में सुखी रह सकता है। वैदिक समाजवाद का आदर्श अखिल ब्रह्माण्ड का एक स्वामी स्वीकार करना और उसके अन्तर्गत जितने भी प्राणी हैं, चाहे वे मनुष्य हों या पशु सब को उस एक अखिल ब्रह्माण्ड के स्वामी की सन्तान या प्रजा मानना है। वेद इस बारे में कहता है—

समाजवाद का तृतीय सूत्र-मन्त्र—(३)

भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।

(यजु० अ० १३। मं० ४)

वह परमात्मा इस उत्पन्न हुए जगत् का प्रसिद्ध एक मात्र स्वामी है। वही—

यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो बभूव।

(यजु० अ० २५। मं० ११)

वह परमात्मा इस समस्त संसार का एक मात्र राजा—अधिपति है। मानव के अन्दर इस भावना के जाग्रत् करने की आवश्यकता है, जिससे अपने स्वार्थ के लिए मानव अपने में से संहारक वृत्ति का उच्छेद कर सके। विश्व के प्राणिमात्र के प्रति प्रेम की भावना का उदय हो। सब परस्पर प्रेम-पाश में आबद्ध हों। सब एक-दूसरे के पालन-पोषण करने की भावना से युक्त होकर व्यवहार सम्पन्न करें।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai
इस प्रकार के मानव के व्यवहार, कल्याणकारक तथा सुखदायक संसार में सब के प्रति हो सकें।

उच्च संस्कृति में प्राणिमात्र के कल्याण की भावना का दर्शन

इसी भावना को जाग्रत् करने के लिए वेद में निम्न प्रार्थना है—

समाजवाद का चतुर्थ सूत्र-मन्त्र—(४)

शन्नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे।

(ऋ० ७। सूक्त ५४। मं० १)

हे प्रभु! आप हमारे मानव एवं पशु-जगत् के लिए सदा कल्याणकारी, सुखदाता होइये और हम भी उसी के अनुसार सब के लिए सुखदाता बनें। वेद की यह भावना वर्तमान सामाजिक जीवन की शिक्षा के मूल में होनी चाहिए। सब के प्रति कल्याण की भावना जाग्रत् हुए बिना हम कैसे आदर्श समाज का निर्माण कर सकेंगे। इस भावना के जाग्रत् होने पर—

वैदिक संस्कृति से मानवों की रक्षा

समाजवाद का पंचम सूत्र-मन्त्र (५)

पुमान्पुमान्सं परिपातु विश्वतः।

(यजुर्वेद अ० २६। मं० ५१)

मानव, मानव की सब प्रकार से, सब ओर से, सब साधनों से प्रीतिपूर्वक अच्छी प्रकार रक्षा करने के प्रयत्नों पर अग्रसर हो सकेगा।

आज संसार में मनुष्य अनेक प्रकार के वादों—वर्गवाद, जातिवाद, राष्ट्रवाद आदि में विभक्त हो गया है। एक वर्ग दूसरे वर्ग पर, एक जाति दूसरी जाति पर, एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र पर, एक देश दूसरे देश पर, एक विचारधारा के व्यक्ति दूसरी विचारधारा के व्यक्तियों पर, एक सम्प्रदाय दूसरे सम्प्रदाय पर अपना सामाजिक,

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

जातिगत, भौगोलिक, राजनीतिक, वैचारिक एवं साम्प्रदायिक ग्राधिपत्य स्थापित करने के लिए एक-दूसरे के प्रति ग्रविश्वासी, द्रोही, क्रूर, हिंसक ग्रौर निर्लज्ज बनकर कौन-सी कुटिलता, पाशविकता, बर्बरता, ग्रसभ्यता ग्रौर ग्रन्याय नहीं कर रहा ?

ग्रपने को सभ्य मानने वाले सभी राष्ट्र क्या पशु पक्षियों के रक्त से इस पृथिवी को रक्तरंजित नहीं कर रहे। ग्रपने हठ ग्रौर दुराग्रह को दूसरे राष्ट्रों पर लादने ग्रौर स्वार्थ सिद्धि के लिए क्या मानव के रक्त की नदियाँ नहीं बहाई जा रहीं ? राष्ट्र एक-दूसरे को विनष्ट करने के लिए भयंकरतम ग्रस्त्रों के निर्माण में ग्रपनी सम्पूर्ण शक्ति लगा रहे हैं। हिंसा से शान्ति का स्वप्न लेने वाले, समाज में कभी प्रेम का साम्राज्य ग्रौर एकत्व की भावना जाग्रत् नहीं कर सकते। ग्रतः मनुष्य में विशाल सामाजिक भावना के जाग्रत् करने के लिए प्रत्येक को—

'पुमान्पुमान्सं परिपातु विश्वतः

वेद के इस महावाक्य का, कार्य के प्रत्येक क्षेत्र में सर्वदा स्मरण कर ग्रपने व्यवहार को उत्तरोत्तर परिष्कृत, मानवता के निर्माण एवं उन्नति में करना चाहिए ग्रौर प्रत्येक की रक्षा की भावना के साथ, सद्भावना से कार्य करना चाहिए।

इसी भावना को दृढ़ करने के लिए वेद ने कहा—

मा हिँ सीः पुरुषं जगत्।

(यजु० ग्र० १६। मं० ३)

मानव समाज को—पुरुष की हिंसा मत करो। यह रक्षणीय है, पालनीय है। संसार का सर्वश्रेष्ठ प्राणी है। विद्या एवं विज्ञान का यह कोश है। कला-कौशल का ग्रद्भुत सर्जक है। परमात्मा के पश्चात् यही इस सृष्टि का स्वामी है। इसमें ग्रपूर्व पुरुषार्थ है। इसमें ग्रद्भुत चिन्तन शक्ति है। इसमें महान् देवत्व है। देवों की यह दिव्य पुरी है। स्वर्ग का कल्पवृक्ष यही है। यह ग्रपनी कल्पना से इस संसार में विविध प्रकार की सृष्टि का सर्जन करता है। यह हत्या करने योग्य नहीं है क्योंकि इसकी रक्षा से सारे जगत् का कल्याण है। इसीलिए वेद में समस्त जगत् के कल्याण, प्रसन्नता

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

एवं आरोग्य की प्रार्थना की गई है :—

समाज के निर्माण के लिए शुभ मन की आवश्यकता

शिवेन वचसा त्वा गिरिशाच्छा वदामसि।
यथा नः सर्वमिज्जगदयक्ष्मꣳ सुमना असत्॥
(यजु० अ०१६ मं० ४)

हे समस्त प्राणियों की वाणियों के ज्ञाता परमेश्वर! मंगलमय वचनों द्वारा हम आपसे बड़ी नम्रता से प्रार्थना करते हैं कि आप ऐसी कृपा कीजिए, जिससे सारा जगत् नीरोग एवं शुभ मन वाला हो।

खराब मन ही संसार में अशान्ति, रोग, दुःख आदि उत्पन्न करता है। संसार के प्राणियों का मन शुभ करने के लिए ही समाज-शास्त्र की रचना है। जिस कार्य से सब की उन्नति हो, सब में सुख बढ़े, उसको अंगीकार करना चाहिए। जिन कामों से सब की उन्नति में बाधा पड़े और केवल अपना ही भला हो, ऐसे कार्यों को त्यागना चाहिए।

सामाजिक सर्वहितकारी नियमों के पालन करने में समाज को कटिबद्ध होना चाहिए। इससे भूमण्डल में मानवता का विकास होगा। समाज सुखी और सम्पन्न होगा। पारस्परिक राग-द्वेष, वैर विरोध, लूट व आतंक, भय और शंका, अशान्तियां और क्रान्तियाँ, गृह-कलह एवं महायुद्ध, हड़ताल और प्रदर्शन, मानव जीवन के व्यवहार से एक बार लुप्त हो जायेंगे। इन्हें निर्मूल करने से ही समाज का विशाल एवं सुखी रूप सम्मुख आ सकता है। अतः मानव समाज संसार के उपकार करने के मुख्य उद्देश्य को ग्रहण करे, जिसका वेद विविध प्रकार से संकेत कर रहा है।

सत्य से समाजवाद का विकास

समाज निर्माण के पूर्वोक्त आदर्श को मानव समाज में व्याप्त करने के लिए आवश्यक है कि हमारा पारस्परिक व्यवहार सत्य-पूर्ण होना चाहिए। बिना सत्य व्यवहार के हम सब एक-दूसरे की रक्षा नहीं कर सकेंगे। सत्य व्यवहार से ही निश्छल और सच्चे प्रेम

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

का उदय होगा।

यदि समाज के व्यक्तियों का व्यवहार सत्यपूर्ण नहीं होगा, तो परस्पर प्रेम, विश्वास और रक्षा की भावना की जागृति न हो सकेगी। वेद इस सत्य सनातन, ध्रुव सिद्धान्त के बारे में कहता है कि असत्य में कभी श्रद्धा, प्रेम, विश्वास आदि नहीं हो सकते। सत्य में ही श्रद्धा, प्रेम, विश्वास होते हैं।

यदि कोई व्यक्ति असत्य के प्रति श्रद्धा करता है तो वह भी उसे असत्य जानकर श्रद्धा नहीं करता, अपितु सत्य समझ कर ही श्रद्धा प्रेम या विश्वास करता है और ज्यों ही उसको यह ज्ञात हो जाता है कि अमुक बात असत्य है, तभी से उसका पूर्व विश्वास, प्रेम, श्रद्धा या मान्यता नष्ट हो जाती है। अतः श्रद्धा, विश्वास, प्रेम आदि सत्य के ही प्रति जाग्रत् होते हैं। इसीलिए वेद ने कहा है—

समाजवाद का षष्ठ सूत्र-मन्त्र—(६)

दृष्ट्वा रूपे व्याकरोत्सत्यानृते प्रजापतिः।
अश्रद्धामनृते दधाच्छ्रद्धाँ सत्ये प्रजापतिः॥

(यजु० अ० १९। मं० ७७)

इस जगत् में प्रजापति ने असत्य और सत्य का भेद करके श्रद्धा को सत्य में स्थापित किया और अश्रद्धा को असत्य में स्थापित किया। अतः समाजशास्त्र का यह आधार भूत सिद्धान्त है कि सत्य के ग्रहण करने और असत्य के त्यागने में मानव-समाज को सदा उद्यत रहना चाहिए। इसका बहुत ही आदर एवं उदारता से, स्वार्थभावनाओं को त्याग कर प्रचलन करना चाहिए।

सत्य से समाज में प्रीति का उद्गम

सत्य व्यवहार से श्रद्धा एवं प्रीति की सबके प्रति भावना व्यवहार रूप में बनी रहेगी और उससे समस्त मानव सुखी तथा परस्पर एक सूत्र में प्रेम से आबद्ध रहेंगे। सबके हृदय में सत्य व्यवहार से प्रेम भाव जाग्रत् होगा। प्रेम की भावना जाग्रत् न रहने पर परस्पर छल-कपट एवं असत्य का व्यवहार होने लगता है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

उससे समाज में कलह एवं अशान्ति उत्पन्न हो जाती है। समाज एक सूत्र में आबद्ध नहीं रह पाता। अतः सबसे प्रीतिपूर्वक सत्य, अहिंसा, रक्षा, प्रेमादि धर्मों के अनुसार वर्तने के लिए, समाज के प्रत्येक व्यक्ति के हृदय एवं मन को एक समान, अत्यन्त प्रीतियुक्त बनाने के लिए वेद आदेश देता है—

समाजवाद का सप्तम सूत्र-मन्त्र—(७)

सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः।
अन्योन्यमभिहर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या ॥

(अथर्ववेद । अ०३ । सू०३० । मं०१)

अर्थात् तुम सब के हृदयों को मैं सहृदय बनाता हूँ, जिससे तुम जैसे अपने लिए सुख की कामना करते हो, उसी प्रकार से अन्यों के लिए भी समान हृदय वाले रहो ; तुम्हारे मनों को परस्पर एक-दूसरे से प्रसन्न रखने वाला बनाता हूँ और उन मनों को वैर-विरोध रहित व्यवहार के लिए बनाता हूँ। हनन न करने योग्य गाय जिस प्रकार उत्पन्न हुए बछड़े पर वात्सल्य भाव से वर्त्तती है, वैसे तुम एक-दूसरे से प्रेमपूर्वक, वात्सल्यभाव से वर्त्ताव किया करो।

इसका तात्पर्य यह है कि इस मानव देह में परमात्मा ने मन एवं हृदयों में सहृदयता एवं समानता के भावों के अंकुर स्थापित कर रखे हैं। उन अंकुरों को हमें पल्लवित एवं पुष्पित करने के लिए हृदय एवं मन को कल्याणकारी, शुभ भावनाओं के मधुर एवं उत्तम जल से सिंचित करना चाहिए, जिससे प्रत्येक व्यक्ति का, छोटे-बड़े का परस्पर प्रेम, गौ एवं उसके बछड़े के तुल्य दृष्टिगोचर होने लगे और परस्पर प्रेममय दूध का आदान-प्रदान कर समस्त समाज प्रसन्न एवं पुष्ट हो सके।

समाज में प्रत्येक व्यक्ति का स्थान छोटा और बड़ा अपेक्षाकृत है। कोई किसी न किसी आयु में, विद्या में, बल में, धन में, शक्ति में छोटा और बड़ा दोनों ही स्थिति में है। छोटे का अपनें से बड़े के प्रति और बड़े का अपने से छोटे के प्रति वात्सल्यभाव रक्षा एवं

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पोषण गौ और बछड़े के समान होना चाहिए। इस वात्सल्य भाव से समाज में स्वर्गीय, दिव्य प्रेम प्रकट होगा और समाज वास्तव में स्वर्गीय सुख अनुभव करेगा।

समाज के व्यक्तियों का
मन शिवसङ्कल्प वाला हो

समाज के व्यक्तियों के मनों से ही समाज में विचारों का उद्गम होता है और उससे कर्मों की प्रवृत्ति होती है। समान रूप से व्यक्तियों के मनों के विकास से सामूहिक कर्मों की प्रवृत्ति बनती है। सामूहिक कर्म समाज के निर्माण में परम सहायक हैं। यदि समाज के व्यक्तियों के मन अच्छे होंगे तो समाज सुदृढ़ और समुन्नत होगा। अतः वेद कहता है –

समाजवाद का अष्टम सूत्र-मन्त्र—(८)

मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु।

(यजुर्वेद अ० ३४। मं० १)

मेरा मन शिव, कल्याणकारी, शुभ, उत्तम संकल्प वाला हो। समाजशास्त्र का यह सिद्धान्त प्रतिपादक वैदिक सूत्र या मन्त्र सदा स्मरणीय है। समाज की तथा उसके समस्त व्यवहार की मानसिक पृष्ठभूमि बनाने के लिए यह आदर्श तुल्य है। समाज के मन के शुभ होनें पर वह समाज दोषरूपी शत्रुओं से भी बच सकेगा। मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु के निर्माण के लिए वेद ने निम्न प्रयत्न करने का आदेश दिया है—

दुष्ट भावों का त्याग करें

नवम सूत्र-मन्त्र—(९)

दुर्मतिं जहि। (यजु० अ० ११। मं० ४७)

दुष्ट बुद्धि को सब प्रकार दूर करें। दुष्ट बुद्धि ही सब अनर्थों की जननी है। इन अनर्थों से ही दुःख होते हैं, अतः दुर्मति के त्यागने से—

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

प्राणिमात्र को दुःखों से दूर करें

दशम सूत्र-मन्त्र—(१०)

दुरितानि परासुव। (यजु० अ० ३०। मं० ३)

समस्त दुःख दूर किये जा सकते हैं। जो समाज इन मन्त्रों का जप करेगा और सदा इनका अनुष्ठान करेगा तथा इनके अनुसार कार्य करेगा, वह सुखी एवं उन्नत बन सकेगा। उस समाज के व्यक्तियों के दूषित एवं कष्टदायक कर्म दूर रहेंगे और—

सुखों का सर्वत्र प्रसार करें

ग्यारहवाँ सूत्र-मन्त्र—(११)

यद्भद्रं तन्न आ सुव। (यजु० अ० ३०। मं० ३)

जो कल्याणप्रद विचार एवं कर्म हैं, वे सबको प्राप्त होंगे। अतः मानव समाज को, उसके प्रत्येक व्यक्ति को—'यद् भद्रन्तन्न आ सुव'—इस को सम्यक् प्रकार चरितार्थ करना होगा।

'दुरित—क्या हैं ? और 'भद्र' क्या है ? इसका ज्ञान समाज को होना चाहिए। जीवन को भद्रोन्मुख करना चाहिए। संसार में आज जो कहीं भी भद्र की प्रतीति होती है, उसका जो स्रोत है उसकी ओर यदि हमारा समाज निरन्तर बढ़ता जाये, तो समाज भद्रमय, आनन्दमय, कल्याणमय एवं शिवमय हो जायेगा। अतः समाज का सम्पूर्ण रूप से प्रयत्न 'दुरितानि परासुव' और 'यद्-भद्र तन्न आसुव'—की साधना में लगना चाहिए।

दुःखनिवृत्ति एवं सुख-प्राप्ति की साधना

इन दोनों साधनाओं के लिए समाज को कर्म करने होंगे। उनके लिए कठोर श्रम, तप, करना होगा। समाज में ओज और तेज भरना होगा। समाज के जनों को श्रेष्ठ एवं कल्याणकारक कर्मों को करने तथा त्याज्य कर्मों को छोड़ने के लिए मन की प्रबल शक्ति के साथ दृढ़-प्रतिज्ञ बनना होगा। व्रत, नियम आदि का कठोरता से पालन

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

करना होगा। शुभ गुणों और कर्मों का शरीर, वचन एवं मन से पालन करने के लिए तथा शुभ संस्कारों की स्थापना, जागृति एवं प्रचार के लिए विविध प्रयत्नों को करने के लिए कृतप्रतिज्ञ होने का ही नाम व्रत ग्रहण है। अतः व्यक्ति एवं समाज के निर्माण में व्रतों का अत्यन्त महत्त्व है। जिस समाज के व्यक्ति शुभ गुणों के ग्रहण के लिए कृतसंकल्प हों और उस के अनुसार अनुष्ठान या आचरण करके अपने शरीर आत्मा एवं मन को दोषों से पृथक् रखने का प्रयत्न करके शुभ गुणों से अपने शरीर, मन एवं आत्मा को परिपूरित करेंगे, वह समाज शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक एवं सामाजिक दृष्टि से अवश्य उन्नतशील सदा बना रहेगा। इसीलिए वेद ने कहा—

व्रतों पर आचरण करो

बारहवाँ सूत्र-मन्त्र—(१२)

व्रतं कृणुत व्रतं कृणुत। (यजु० ५। मं० ११)

व्रत करो, जीवन में व्रतों को धारण करो जिससे सर्व प्रकार के शुभ गुणों की अपने अन्दर स्थापना निरन्तर होती रहे। नियमों पर आरूढ़ रहना व्रत है। नियम जीवन के लक्ष्य की ओर बढ़ने की प्रेरणा देता है और व्रत उसका क्रियाशील पक्ष है। ज्ञान और कर्म का समन्वयात्मक समुच्चय जीवन को उन्नतिशील बनाता है।

सृष्टि के पदार्थ व्रतपति हैं

नियमों एवं व्रतों का सार्वजनिक एवं सर्वहितकारी रूप समाज का प्राण है। जब हम सृष्टि के कार्य एवं उनके पदार्थों पर दृष्टिपात करते हैं तो हमें स्पष्ट प्रतीत होता है कि वे बिना किसी भेद-भाव के समान रूप से सार्वजनिक एवं सर्वहितकारी रूप में हो रहे हैं। सृष्टि के विविध कार्य कलाप के केन्द्र वे पदार्थ भी वेद के शब्दों में व्रतपति हैं।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

 Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अग्नि व्रतपति है

वेद हमें बताता है कि—

अग्ने व्रतपाः । (यजु० अ० ५ । मं० ६)

हे अग्नि ! तू व्रतों का पालन एवं रक्षण करने वाला है। सृष्टि-रचना में सबसे महान्, सब व्रतपतियों के भी व्रतपति परमात्मा ने अग्नि को प्रकाश, गति, उष्णता आदि अनेक शुभ गुणों से युक्त करके, इनको धारण करने और इनका प्रसारण करने का व्रती बनाया है। वह अग्नि अपने व्रतों का तभी से अब तक पालन कर रहा है और जब तक सृष्टि रहेगी, तब तक पालन करेगा। अग्नि के इस प्रत्यक्ष व्रत को देखकर जन समाज में तदनुकूल दृढ़तापूर्वक सार्वजनिक, सर्वहितकारी नियमों की दृढ़ता से पालन की प्रेरणा जाग्रत् करने के लिए वेद निम्न मन्त्र द्वारा प्रेरणा दे रहा है—

मनुष्य व्रतों पर चलें

अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम् ।
इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि ।। (यजु० अ० १ । मं० ५)

हे व्रतपते अग्ने ! आप जिस प्रकार से अन्धकार को दूर कर सत्य का प्रकाश करने वाले हैं, उसी प्रकार मैं भी जन समाज के अज्ञानान्धकार को दूर कर सत्य के प्रकाश का, अविद्या के नाश और विद्या की वृद्धि का, असद्व्यवहार को दूर कर सद्व्यवहार के प्रचार का व्रत लेता हूँ। अर्थात् मैं भी तुम्हारे सदृश नियमित रूप से, बिना किसी प्रमाद के यह कार्य करता रहूँगा। यह मेरा स्वभाव बन जाये। अतः व्रत के रूप में इसे अंगीकार करके अपने शरीर, मन और आत्मा को इसके अनुरूप बनाने का प्रयत्न करूँगा। यह मेरा व्रतानुष्ठान कार्य समर्थ बने, ऐसी प्रेरणा मैं आपके द्वारा, आपके गुण, धर्म, व्रतों को देख कर प्राप्त कर सकूँ। इस प्रकार आप मेरे व्रत को सिद्ध कीजिये।

व्रत नियमादि अनुष्ठान के लिए मन, वचन एवं कर्म से जब तक सत्य चिंतन, सत्य वचन एवं सत्य कर्म करने का प्रयत्न नहीं होगा,

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

तब तक इस व्रत की सिद्धि न हो। अतः व्रतानुष्ठानकर्त्ता में, त्यागने योग्य अनृत भाग को छोड़कर, ग्रहण करने योग्य को अधिक निकटता, प्रीति एवं श्रद्धा से ग्रहण करता हूँ।

व्रतों से समाज में आदर्श का निर्माण

जब समाज का प्रत्येक व्यक्ति अपने सम्पूर्ण जीवन में इस मन्त्र की भावना से ओतप्रोत होकर प्रत्येक दिशा में, प्रत्येक व्यवहार में सार्वजनिक हित को लक्ष्य में रख कर शुभ गुणों के ग्रहण के लिए सत्य व्यवहार को अंगीकार करता रहेगा तो ऐसा समाज आदर्श समाज बन जायेगा और उसमें असत्य, छल, कपट, धोखा, कूटनीति का सर्वथा अभाव हो जायेगा। इस प्रकार परस्पर विश्वास, प्रेम और सहानुभूति का सतत प्रवाह बहता रहेगा और उससे समाज में सुख, शान्ति और आनन्द का साम्राज्य बना रहेगा। ऐसे राष्ट्र में जन समाज पर पुलिस, सेना एवं गुप्तचरों आदि का अंकुश नहीं होगा, अपितु सद्भावना, प्रेम, सर्वहितकारी, सर्वोदयी भावनाओं के व्रतों का स्वेच्छया अंकुश होगा। उस अवस्था में बड़ी-बड़ी कोतवालियाँ, हवालातें, विशाल कारागृह और गगनचुम्बी न्यायालयों के भवनों की आवश्यकता भी नहीं रहेगी।

अव्रती समाज पतित हो जाता है

समाज के व्यक्ति जब समाज के आदर्शों से पतित हो जाते हैं और सार्वजनिक तथा सर्वोदयी भावनाओं को त्याग कर स्वार्थपरायण हो जाते हैं, तभी असत्य, अविश्वास, छल, कपट, कूटनीति, भ्रष्टाचार, कलह, अशान्ति, लूट, युद्ध आदि का जन्म होता है और सम्पूर्ण समाज और राष्ट्र एक कारागार के रूप में अपने को आबद्ध पाता है। अतः समाज को इन सब दोषों से पृथक् रखने के लिए आचार को समाज का परम धर्म मानना चाहिए।

चरित्र शुद्धि की आवश्यकता

विविध प्रकार के आचार-विचार एवं चरित्रों की शुद्धि की पुष्टि करने के लिए वेद निम्न शब्दों में उपदेश दे रहा है—

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

 Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

तेहरवाँ सूत्र-मन्त्र—(१३)

चरित्रांस्ते शुन्धामि। (यजु० अ० ६। मं० १३)

तेरे चरित्रों को शुद्ध करता हूँ। चरित्र का तात्पर्य उन सब कर्मों से है, जिनके द्वारा हम विविध प्रकार के अपने व्यवहारों को सम्पन्न करते हैं। अर्थात् हमारा आचार-व्यवहार, शील-स्वभाव, संकल्प एवं कर्म सब प्रकार से शुद्ध-पवित्र होने चाहिए।

हम व्रतों द्वारा अपने आचरण को, चरित्र को शुद्ध करते हैं। अतः व्रतपति अग्नि के व्रतों या कर्मों एवं गुणों को देखकर अपने में भी गुण धारण करें।

सूर्य, चन्द्र, वायु आदि का व्रत

सृष्टि में सूर्य भी व्रतपति बनकर नियमित रूप से कार्य कर रहा है। चन्द्र भी व्रतपति बनकर, अपने नियम पर आरूढ़ होकर अपना मंगलमय व्यवहार सम्पादित कर रहा है। आज से लाखों, करोड़ों वर्ष पूर्व सूर्य एवं चन्द्र के उदय एवं अस्त का जो क्रम था, वह आज भी उनमें दृष्टिगोचर हो रहा है। सूर्य ने कभी शीतलता प्रदान नहीं की और न चन्द्रमा ने कभी उष्णता प्रदान की। वायु भी व्रतपति बनकर संसार को प्राणों से पूर्ण कर रहा है।

जगत् में इन व्रतपतियों को देखकर सृष्टि के आदि से प्रलय पर्यन्त हम उपदेश करते हुए अपने चरित्रों का निर्माण कर सकते हैं। इसीलिए सूर्य व्रतपते व्रतं चरिष्यामि—चन्द्र व्रतपते व्रतं चरिष्यामि—वायो व्रतपते व्रतं चरिष्यामि—आदि मन्त्रों का समन्वय, बालक का जब उपनयन संस्कार होता है और उसे शूद्रत्व से द्विजत्व में प्रवेश कराया जाता है, तब उसे सृष्टि यज्ञ के इन सब व्रतपतियों को लक्ष्य में रखकर उनके व्रतों को देख एवं अनुभव करके व्रती बनना पड़ता है और स्वीकार करना पड़ता है—

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

चौदहवां सूत्र-मन्त्र (१४)

स्वस्ति पन्थामनुचरेम सूर्याचन्द्रमसाविव ।

(ऋ० मं० ५ । सू० ५१ । मं० १५)

हम सूर्य और चन्द्र के कल्याणकारी मार्गों को अच्छी प्रकार जानें। तदनुसार हम अपने जीवन में उनके गुणों एवं नियमों को धारण करके समाज को भी कल्याणकारी मार्गों पर ले चलें। सूर्य और चन्द्र के कल्याणप्रद कार्यों से सृष्टि में जड़ और चेतन जगत् का व्यवहार चल रहा है, अतः हमें भी अपने समाज या राष्ट्र के नियमित संचालन के लिए, उनसे समाज के संरक्षण, पालन और समृद्धि के आदर्शों को ग्रहण करना चाहिए।

परमात्मा का यह विश्व अपने कर्त्तव्य एवं नियम से हमें सदा शिक्षा देता रहेगा। ये हमारे सदा के पथप्रदर्शक हैं। इनमें सारा रहस्यमय विज्ञान भरा हुआ है। इसीलिए वेद पुनः कह रहा है—

सूर्यस्यावृतमन्वावर्ते । (यजु० अ० २ । मं० २६)

सूर्य का जो आवर्त्तन क्रम है, जिसकी नियमितता से काल का सूक्ष्म से सूक्ष्म और महान् से महान् परिमाण निर्मित हो रहा है, दिन और रात्रि का चक्र चल रहा है, शुक्ल और कृष्णपक्ष मासों का निर्माण कर रहे हैं और मासों से ऋतुओं का क्रमपूर्वक निर्माण, उनसे अयन, अयनों से संवत्सर, युग, कल्प, मन्वन्तरादि का निर्माण हो रहा है और उससे सृष्टि में भी जीवन का आवर्त्तन क्रम चल रहा है, उसी प्रकार से समाज को भी विविध परिस्थितियों में जीवित, जाग्रत, समृद्ध, विजयी एवं तेजस्वी बनाये रखना चाहिए। ऐसा उपदेश इस मन्त्र वाक्य से सूर्य के माध्यम से अपने अन्दर ग्रहण करना चाहिए।

परमात्मा की सृष्टि में प्रत्येक पदार्थ हमें ज्ञान और प्रेरणा दे रहा है, अतः हमें उनके कार्यों का निरीक्षण करने का निरन्तर प्रयत्न करना चाहिए और तदनुकूल व्यवहार अपने में धारण करना

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

 Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

चाहिए। इस कार्य से कभी विमुख नहीं होना चाहिए।

वैदिक श्रमवाद

हमें कर्त्तव्य की ओर निरन्तर प्रेरणा देने के लिए वेद उपदेश दे रहा है—

पन्द्रहवां सूत्र-मन्त्र (१५)

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतँ समाः ॥

(यजुः अ० ४० । मं० २)

इस जीवन में कर्म करते हुए जीने की इच्छा करो। अकर्मण्य तथा आलसी बन कर जीने की इच्छा भी मत करो। आराम या आलस्य कर्त्तव्यपरायणता के शत्रु हैं। इनका त्याग करना होगा। निरुद्यमी, आलसी व्यक्ति संसार में कुछ नहीं कर सकते। ऐसे व्यक्तियों की अकर्मण्यता से समाज में जिन दुष्प्रवृत्तियों का जन्म हो जाता है, वे समाज के लिए महान् अनर्थकारी होती हैं।

अकर्मण्यता से समाज में दोष

अकर्मण्य व्यक्ति आलस्य एवं प्रमाद के वशीभूत हो कर विलास में लिप्त रहना चाहते हैं और उस विलास के लिए ऐश्वर्य का संग्रह करते हैं। फिर उस द्रव्य से प्रजा के जीवन को खरीद कर अपने स्वार्थ की पूर्ति में झोंकने लगते हैं। अतः समाज को—'कुर्वन्नेवेह कर्माणि' का मन्त्र सतत जपना होगा और अकर्मण्य बन कर दूसरे के धन को छल से हरण करने की वृत्ति से बचना होगा।

इसके लिए वेद ने उपदेश दिया—

सोहलवां सूत्र-मन्त्र (१६)

मा गृधः कस्य स्विद्धनम् ॥ (यजु० अ० ४० । मं० १)

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

समाज का कोई व्यक्ति किसी के धन का—किसी के स्वत्व का—किसी के अधिकार का अपहरणकर्त्ता या अपहरण करने की इच्छा वाला भी न हो। दूसरे के धन या अधिकार पर लोभदृष्टि, उसके हरण करने के उपाय एवं प्रयत्न समाज के शान्त मन को अशान्त कर देते हैं। उनकी वृत्तियों को दूषित कर देते हैं। अतः—'मा गृधः कस्य स्विद्धनम्'—यह वेद का महान् आदर्शमय घोष जन-समाज में सदा गुंजायमान रहना चाहिए और समाज को इस ओर अग्रसर रखना चाहिए।

परमात्मा का श्रमवाद

कठोर परिश्रम की ओर समाज की प्रवृत्ति बनाने से समाज में अनेक प्रकार की कलाओं का विकास होता है। परमात्मा सबसे बड़ा परिश्रमी है, अतः वह सबसे बड़ा तपस्वी है। उसके श्रम से ही विश्व में सर्वत्र कला-कौशल विद्यमान है। उसके ही तप से पृथिवी में, जल में, अग्नि में, वायु में महान् ऐश्वर्य भरा हुआ है। यदि हम अपने ज्ञान और श्रम से उसे जान लें और उद्घाटित कर लें, तो इस पृथिवी पर सुवर्ण, रजत, लौह, ताम्रादि विविध द्रव्यों के पर्वताकार संचित कोश प्राप्त हो जाते हैं।

प्रातःकाल हरित घास पर जैसे ओस के बिन्दु मुक्ता की छवि प्रकट करते हुए सर्वत्र बिखरे हुए हमें आकर्षित करते हैं, उसी के समान इस विशाल पृथिवी और समुद्र के अन्तस्तल में मुक्तामणि, हीरा, पन्ना, नीलम आदि बिखरे हुए दृष्टिगोचर होते हैं।

कहीं शक्ति और जीवन का कोश अन्नौषधि, फल तथा उनके विविध रसों में भोज्य रूप में भरा पड़ा है और इन सब के साथ सर्वत्र नियम, ज्ञान और अपूर्व आनन्द का अथाह सागर भी उनमें से हिलोरें लेता हुआ हमें श्रम की प्रेरणा दे रहा है।

हम उसमें से एक कण मात्र को प्राप्त कर विद्वान् बन जाते हैं, धनवान् बन जाते हैं, शक्तिवान् बन जाते हैं और आनन्दी बन जाते हैं। संसार में मनुष्य जो भी करता है, जो भी जानता है, वह सब

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

 Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

उसी महाश्रमी के श्रम से निर्मित महान् कोश से ही समुद्र से विन्दुवत् प्राप्त करता है।

इतने महान् ऐश्वर्यों की रचना, क्रमपूर्वक संग्रह और उसकी कलापूर्ण रचना के लिए परमात्मा को कितना कठोर श्रम करना पड़ा होगा। सृष्टि की रचना प्रारम्भ करने के लिए उस परमात्मा ने श्रम किया—महान् श्रम किया—तप किया। जिन ब्रह्मनिष्ठ ऋषियों ने उसके तप को अनुभूत किया उन्हें कहना पड़ा—'स तपोऽतप्यत'। उसी महान् श्रमी के तप से यह अद्भुत रचना हमारे सामने अविचल दृष्टिगोचर हो रही है। 'जगन्मिथ्या'—के मानने वालों को भी यह चुनौती दे रही है। उनका जीवन समाप्त हो गया—पर यह अटल, ध्रुव रूप से खड़ी है।

श्रम की आवश्यकता परमात्मा को भी पड़ती है, अतः हमें जीवन में श्रम या तपरहित न बनने की प्रेरणा देने हेतु सर्वोच्च सत्ता के लिए भी वेद में कहा :—

सत्रहवां सूत्र-मन्त्र (१७)

ऋतं च सत्यं चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत।

(ऋ० मं० १० । सू० १९० । १)

उस परमात्मा के अच्छी प्रकार तप से ऋत और सत्य, कार्य कारण भावात्मक सृष्टि का निर्माण हुआ।

मानव भी श्रम करें

श्रमेण तपसा सृष्टा ब्रह्मणा वित्त ऋते श्रिता।

(अथर्व कां० १२ । सू० ५ । १)

परब्रह्म ने श्रम से—तप से इस सब सृष्टि का सर्जन किया है और—'वित्त ऋते श्रिता'—अर्थात् न्याय रूप सत्य धर्म के आश्रित वित्त, धनादि को परमात्मा ने किया। इसलिए हम जिस समाज का निर्माण करना चाहते हैं उसके सामुदायिक विकास के लिए श्रम की

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

प्रधानता रखनी चाहिए।

जब हमारा परमात्मा—सर्वोच्च सत्ता ही श्रम करने वाली है तो हम भी क्यों न परिश्रमी बनें। हम अपने श्रम से सब की सामूहिक एवं व्यक्तिगत आवश्यकताओं की पूर्ति करके सुख प्राप्त कर सकते हैं। अतः समाज को उद्यमी, पुरुषार्थी, श्रमी बनाने के लिए वेद सन्देश देता है और वह श्रम सत्य के आधार पर हो, जिससे न्यायानुसार धनादि की प्राप्ति से समाज सुखी एवं समृद्ध हो सकें।

वैदिक-समाजवाद से साम्यवाद की प्राप्ति

समाज में वित्त का वितरण श्रम के न्यायानुसार तो होना ही चाहिए, परन्तु केवल इस आधार पर कुछ काल तक समाज के चलने से कालान्तर में विषमता की प्राधान्यता भी हो सकती है और यदि वित्त के वितरण में समानता का ही उद्देश्य बना रहेगा, तो समाज में आलस्य और अकर्मण्यता की प्रवृत्ति बढ़ जाएगी। अतः अनिवार्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए समाज में सबके लिए एक-सी व्यवस्था करनी पड़ेगी तथा उसके अतिरिक्त यदि कोई अपने श्रम से धन उपार्जित करके तथा उसके द्वारा सुखों के प्रसाधनों का विकास करता है, तो उसके लिए भी समाज को विकासोन्मुख करके श्रम के द्वारा आगे बढ़ाने का मार्ग उन्मुक्त करना चाहिए। इसलिए पूर्व मन्त्र में वेद ने वित्त के वितरण के लिए—वित्तऋतेश्रिता—सत्यश्रम, न्यायानुसार आश्रित किये जाने के लिए कहा और सार्वजनिक, सर्वहितकारी, सर्वाभ्युदयकारी सामान्य सुखों के लिए_सबको समान भाग देने के लिए भी आदेश दिया है।

वैदिक समाजवाद में व्यक्ति का समष्टि में लय

वैदिक समाज व्यवस्था में व्यक्ति और समाज दोनों के विकास के लिए मार्ग उन्मुक्त है। व्यक्ति भी उन्नति करें, परन्तु उसकी उन्नति से जब तक सब की उन्नति में बाधा न हो, तब तक प्रयत्न

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

करते रहना चाहिए। क्योंकि समाज का मूलाधार व्यक्ति का समष्टि में प्रेम और अभिन्नता की अनुभूति ही है। इसलिए वेद ने सामाजिक भावों की जागृति के लिए कहा—

"सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः।"

(अथर्वकां३ सूक्त ३०। मं १)

मैं तुम सबको समान हृदय रूप से, प्रेमपूर्ण वर्तने वाला, एक मन, एक चित्त होकर परस्पर प्रीति से रहने वाला तथा परस्पर द्वेषरहित होकर एक दूसरे के प्रति जीवन-यापन करने वाला बनाता हूँ। अतः समाजवाद की आधारशिला को अपने में स्थिर रूप से स्थापित करना और इस आदर्श को सदा सामने रखना चाहिए।

वैदिक साम्यवाद

यह वैदिक आदर्श जिस समाज के व्यक्तियों के सम्मुख रहेगा, उसमें शान्ति और सुख बना रहेगा। इसलिए वेद ने सबके सामूहिक सुखों के लिए एवं सब को एक समान समाज का अंग समझकर समान वर्ताव करने एवं समान व्यवहार के लिए प्रचलन करने के लिए कहा—

अठारहवां सूत्र-मन्त्र

सङ्गच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते॥

समान प्रगति

१. सङ्गच्छध्वम्

हम सब एक साथ चलें अर्थात् जिस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए हम सब कटिबद्ध हों, उसके लिए सम्मिलित रूप से परस्पर सहयोगी एवं एक-दूसरे के कार्य के पूरक बनकर वर्ताव करें या कार्य करें।

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

प्रत्येक उन्नत व्यक्ति अपने से न्यून उन्नत को अपने समान उन्नत करने का प्रयत्न करे। इसके अतिरिक्त 'संगच्छध्वं' का यह भी अर्थ है कि हम सब सम्यक् रीति से, युक्तिपूर्वक, भली प्रकार जीवन के सब आदर्शों एवं लक्ष्यों की पूर्ति का प्रयत्न करें। हमारे प्रयत्न परस्पर विरोधी या विपरीत गति वाले न हों।

संभाषण श्रेष्ठता

२. संवदध्वम्

अर्थात् हम लोग अच्छी प्रकार, परिष्कृत, सुसंस्कृत, प्रिय, मनोहारी तथा हितकारी वचनों का परस्पर व्यवहार करके समाज में प्रेम और आनन्द की वृद्धि करें। साथ-साथ बोलें, इस अर्थ से यह भी प्रेरणा मिलती है कि हमारी वाणियाँ एक-दूसरे के प्रति विरोधी न हों और हमारी सामूहिक ध्वनि में हमें एक लक्ष्य प्राप्ति के लिए एक रूपता और निश्चलता प्रकट होती रहे। हम समाज में कटाक्ष या कटु वचन आदि का व्यवहार न होने दें, जो प्रेमपूर्ण हृदयों और अभिन्न मन वालों में भिन्नता उत्पन्न कर देते हैं।

कल्याणी वाणी बोलो

वेद ने इसीलिए एक स्थल पर कहा है

वाचं वदत भद्रया।

(अथर्वकां०३। सू० ३१मं०३)

अर्थात् हम लोग कल्याणकारिणी, सुखदायिनी शान्तिप्रदायिनी वाणी का प्रयोग करें। समाज में वाणी का अत्यन्त महत्त्व है। हमारे हृदय के भाव वाणी से ही प्रकट होते हैं। हमारे सब व्यवहार वाणी से ही सम्पन्न होते हैं। यदि वाणी रहित, मूक समाज होता तो समाज में ज्ञानविज्ञान के प्रसार का कार्य रुक जाता। अतः वाणी का समाज के निर्माण एवं विकास में प्रमुख हाथ है। यदि वाणी का उचित

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

रीति से समाज में प्रयोग होगा तो समाज का निर्माण एवं विकास भी अच्छी प्रकार होगा। यदि उसका प्रयोग अनुचित प्रकार से होगा तो अनर्थ भी होगा।

तीक्ष्ण वाणी को दूर करो

अनर्थकारी वचनों का त्यागना आवश्यक है। इसलिए वेद ने आदेश दिया—

उग्रं वचो अपावधीत्।

(यजु० अ० ५। मं० ८)

क्रोध, आवेश आदि के कारण वचन में जहाँ कठोरता एवं उग्रता आ जाती है, वहाँ उसमें अनुपयुक्त, अनुचित शब्दों का भी प्रयोग हो जाता है और उससे सुनने वालों के मन में भी उग्रता का, क्रोध का संचरण हो जाता है और परिणामत: उत्तर प्रत्युत्तरों में अनेक आवेशपूर्ण, अनुचित, अनर्थोत्पादक शब्दों का तारतम्य अनुचित, अशिष्ट एवं विरोधी कर्मों का जनक हो जाता है। अत: कठोर वचनों को हम समाज से दूर कर दें, जिससे समाज में विघटन क्रिया सक्रिय न हो सके।

वाणी का परिशोधन

वाणी के इस दोष को दूर करने के लिए मानव जाति को वेद उपदेश दे रहा है—

वाचं ते शुन्धामि।

(यजु० अ०६। मं० १४)

तेरी वाणी में जो कठोरता है, उग्रता है, कर्कशपन है, क्रोध, अभिमान एवं दूसरों के प्रति घृणा का जो उसमें स्वर है जिससे समाज में प्रेम का उन्मूलन होता है और कटुता बढ़ती है, उस वाणी को मैं शुद्ध, 'स्वच्छ, अनुकूल, प्रियवादिनी एवं कल्याणकारिणी बनाता हूँ। अर्थात् वाणी के दोषों का शोधन समाज के हित के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

जिह्वा में मधुरता हो

इसका अभ्यास करने के लिए जिह्वा में मधुमत्तमा-अपनी जिह्वा को परम मधुर बनाना पड़ेगा। मधुर वाणी से परस्पर बिछुड़े हुए चित्त एक हो जाते हैं। वर्षों की शत्रुता भी गाढ़ मैत्री में परिणत हो जाती है। अविश्वसनीय व्यक्ति में भी विश्वास के भाव जाग्रत् हो जाते हैं। वैर, विरोध एवं अशान्ति का उन्मूलन हो जाता है और शान्ति, प्रेम तथा आनन्द का स्रोत उमड़ने लगता है। अतः समाज का प्रत्येक व्यक्ति ऐसा प्रयत्न करे कि मेरी जिह्वा सब प्रकार से मधुरता से पूर्ण हो।

मधुर भाषण करने के लिए वेद कहता है

जिह्वाया अग्रे मधु मे जिह्वामूले मधूलकम्।

(अथर्व० कां०१। सू०३४। मं०२)

मेरी जिह्वा के अग्रभाग में मधुरता हो और जिह्वा के मूल भाग में भी मधुरता हो। अर्थात् केवल मात्र मेरी वाणी के अग्र-भाग में—प्रारम्भ में ही मधुरता न हो, अपितु अन्त तक मधुरता हो। केवल मात्र कथनी में ही मधुरता न हो, अपितु उसके ल में, यथार्थ रूप से, सच्चे हृदय से भी मधुरता हो। जब तक हृदय के अन्तस्तल में मधुरता नहीं होगी, तब तक मधुरता का वातावरण बनना असंभव है।

वाणी के मूल आत्मा में भी मधुरता हो

जिह्वा के मूल में मधुरता होने का तात्पर्य यह भी है कि वाणी का मूल प्रेरक आत्मा है। आत्मा की प्रेरणा से मन, मन की प्रेरणा से कायाग्नि, कायाग्नि से वायु प्रेरित होकर उरःस्थल और कंठ में वायु विचरण कर जिह्वा के साहचर्य से विविध स्थान-प्रयत्नों के द्वारा शब्दोच्चारण होता है। अतः वाणी के उत्तरोत्तर मूल मन, बुद्धि एवं आत्मा हैं। इसी प्रकार वाणी के मूल में—आत्मा,

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

 Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

मन एवं बुद्धि आदि में भी मधुरता होनी आवश्यक है—यह प्रेरणा वेद देता है। ऐसी मधुर वाणी शिक्षित एवं सुखदायिनी होती है।

प्रिय व्यवहार

यदि हम चाहते हैं कि हम से सब उत्तम व्यवहार करें, तो हमें भी सबसे उत्तम व्यवहार करना चाहिए। दूसरों से अप्रिय व्यवहार करके यदि कोई उनसे प्रिय व्यवहार की आशा करे तो यह सम्भव नहीं है।

अतः वेद उपदेश देता है कि

प्रियाय प्रियवादिनम् ।।

(यजु० अ० ३० । मं० १३)

प्रेम सम्पादन करने के लिए प्रिय वक्ता बनने का प्रयत्न करो। प्रिय वाणी द्वारा प्रेम के बीजों को हम दूसरों के हृदय में बोते हैं। प्रिय वाणी का प्रभाव हृदय को द्रवीभूत करता है और वह वाणी उसमें निवास कर जाती है। स्मृति में उसका वृक्ष तैयार होता है। और स्मृति के संस्कारों का उसमें पुष्प लगता है तथा उससे कर्म रूपी फल उसमें लगते हैं। इस प्रकार व्यक्ति अपनी वाणी द्वारा ही संसार में कर्मों का चक्र निर्माण कर लेता है।

अतः वेद कहता है

जिह्वा मे भद्रं वाङ् मह।

(यजु०अ०२०। मं० ६)

मेरी जिह्वा अत्यन्त कल्याणकारिणी हो, जिससे उस जिह्वा से उत्पन्न मेरी वाणी महान् शक्तिशाली, प्रभावकारी एवं कल्याण-कारिणी हो। इस प्रकरण में चार मन्त्रों में शरीर के विभिन्न भागों में गुणों की स्थापना का उपदेश है। परन्तु प्रारम्भ जिह्वा से हो

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

रहा है। अर्थात् जिह्वा को ही सर्वप्रथम उत्तम, भद्र कल्याणकारिणी बनाने से शरीर के समस्त अंगप्रत्यंग बलवान्, शक्तिशाली, ऐश्वर्य-प्रद और यशस्वी बन सकेंगे।

जिसने अपनी वाणी को भद्र नहीं बनाया, उसका भद्र कैसे होगा। इसीलिए वेद ने पुनः उपदेश दिया—

उन्नति के लिए मधुर वाणी का प्रयोग

मधुमतीं वाचं वदतु शन्तिवाम्

(अथर्व०कां०३। सूक्त ३६। मं०२)

समाज के लोग परस्पर प्रसन्नता के लिए माधुर्य गुणयुक्त वचन बोला करें। इस प्रकार के समाज या राष्ट्र के अन्दर यदि प्रत्येक व्यक्ति शान्तिदायिनी, मधुर वाणियों का परस्पर प्रयोग करेंगे, तो वह समाज और वह राष्ट्र उन्नत एवं सुसंस्कृत होता जायेगा।

आज हम देखते हैं कि हमारे समाज या राष्ट्र में अपने व्यक्तित्व को आगे लाने के लिए लोग कटु वचनपूर्ण भाषण, परस्पर विरोध एवं घृणा की जागृति के लिए, केवल स्वार्थपूर्ण नेतृत्व की कामना से समाजगत दल या राष्ट्रगत दलों का निर्माण कर रहे हैं। अनेक दलों की दलदल में समाज एवं राष्ट्र की उन्नति रुक जाती है। अतः वाणी के प्रयोग की विद्या, उसे मधुर, प्रिय, भद्र, कल्याणकारिणी, सर्वजन-हितकारी बनाने का शिक्षण देना चाहिए।

वाणी का विश्व पर शासन

उपरोक्त प्रकार से प्रेमपूर्ण वाणी के प्रयोग से—संवदध्वं के अर्थ को समाज के व्यक्तियों को अच्छे प्रकार हृदयंगम करना चाहिए। वाणी से ही तो सारा व्यवहार चल रहा है। समस्त राष्ट्रों के शासन वाणी से ही चल रहे हैं और अखिल विश्व का शासन भी परमात्मा की अव्यक्त एवं व्याप्त वाणी से चल रहा है।

परमात्मा के वे अव्यक्त शब्द विविध माध्यमों में प्रकट हो रहे

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

हैं। कहीं से उसका एक ही स्वर या ध्वनि प्रकट हो रही है, कहीं से दो या अधिक ध्वनियाँ प्रकट हो रही हैं और हमें उन माध्यमों द्वारा तथा अपने द्वारा भी शब्द या ध्वनियों को प्रकट करने की प्रेरणा प्राप्त होती है। वाणी में महान् सामर्थ्य है, अतः हम 'संवदध्वं' के आदर्श पर चलने का प्रयत्न करें।

वाणी में लक्ष्मी का वास

यदि आज समस्त राष्ट्र—संवदध्वं के आदर्श पर चलने लगे तो प्रत्येक राष्ट्र के विविध राजनीतिक सम्प्रदायवादों का अन्त हो जायेगा और समस्त संसार एक सूत्र में ग्रथित हो सकता है। एक सूत्र में ग्रथित संसार में अक्षय लक्ष्मी का वास हो जाता है। उसमें लक्ष्मी विमल होकर चंचला नहीं रह सकती। लक्ष्मी का चांचल्य दोष विभिन्नता से उत्पन्न होता है। जब सब एक सूत्र में ग्रथित होंगे तो वह लक्ष्मी जहाँ भी जायेगी प्रेम के कारण वह सब की उसी प्रकार होगी जैसे एक परिवार में व्यवहार होता है।

वाणी से ही लक्ष्मी का घनिष्ठ सम्बन्ध है। अतः वेद उपदेश देता है—

सक्तुमिव तितउना पुनन्तो यत्र धीरा मनसा वाचमक्रत।
अत्रा सखायः सख्यानि जानते भद्रैषां लक्ष्मीर्निहिताधि वाचि॥

(ऋ० मं०१०।७१।२)

जिस प्रकार छलनी से पिष्ट द्रव्य छाने जाते हैं, उसी प्रकार जहाँ विद्वान् लोग अपनी वाणी को दोषों से पृथक् करके, मधुरता से पूरित करके, कल्याणकारिणी वाणी को मन से शुद्ध एवं प्रेम से युक्त करके प्रयुक्त करते हैं वहीं, पर मित्रता और लक्ष्मी निवास करती है। अतः वाणी को 'संवदध्वं' के आदर्श पर चलाना चाहिए।

वाणी को उपरोक्त गुणों से युक्त करने के लिए आवश्यक है कि वाणी जिसके आधार से विविध रूप एवं विविध भावों के आश्रित होकर प्रयुक्त की जाती है वह मन है, उस मन को भी पूर्ण रूप से अनुकूल बनाना चाहिए। इस निमित्त वेद ने कहा है—

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

(३) सं वो मनांसि जानताम्

हम सबके मन अच्छे प्रकार ज्ञानवान् हों। जिससे अज्ञानवश हमारी वाणियों का अन्यथा एवं अवांछित प्रयोग तथा प्रतिकूल कर्म न हो सके और सब प्रकार के अनर्थों से बचते हुए उन्नति कर सकें।

उन्नति का यही मार्ग है और इसी के आधार पर उन्नति का क्रम सदा चलता आया है। यही 'महाजनो येन गतः स पन्था' के अनुसार हम सबके लिए, हमारे समाज के लिए, सामुदायिक विकास के लिए एवं सर्वोदयी भावना के अनुकूल सदा से चला आया है। इस मार्ग को अपना कर उन्नति करें।

वैदिक समाजवाद से सबकी उन्नति

वैदिक समाजवाद सबके विकास एवं उन्नति का प्रतिपादक है। उसमें जातीय, भौगौलिक या वर्गवादी साम्प्रदायिकता की भावना नहीं है। आज के समाज एवं राष्ट्र में वर्गवाद क्रियाशील है। वर्गों का शासन सीमित उद्देश्य को लेकर होता है अतः वे क्षुद्र एवं साम्प्रदायिक होते हैं। वर्गवादी शासन से राष्ट्र में परस्पर मनोमालिन्य, घृणा, द्वेष, सत्ता को अपने हाथ में लेने के लिए अनैतिक आधार-व्यवहार प्रचलित होना स्वाभाविक है।

वेद इस प्रकार के वर्ग भेद से शून्य गुण-कर्मभेद से राष्ट्र के संरक्षण-पोषण आदि के लिए व्यक्तियों का वर्ण भेद तो प्रतिपादित करता है, परन्तु वर्ग भेद को जाग्रत करके प्रतिद्वन्द्विता जाग्रत नहीं कराता। इसीलिए वैदिक काल में ब्राह्मणों को राजा बनने के लिए क्षत्रियों से प्रतिद्वन्द्विता नहीं करनी पड़ी। ब्रह्माणों को धन की कामना के लिये वैश्य वृत्ति नहीं अपनानी पड़ी, न शूद्र को अपने धर्म को छोड़कर अन्य वर्णों के धर्म-कर्म के लिए संघर्ष करना पड़ा। चारों वर्ण अपने-अपने राष्ट्र एवं समाज में समान मन से कर्त्तव्यरत रहे।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

देव व्यवहार

वेद सबके लिए ज्ञान की महान् ज्योति है। वेद ने सबको 'प्रजापते: प्रजा अभूम'—हम सब उस एक ही परमेश्वर प्रजापति की प्रजा या सन्तान हैं, यह उपदेश दिया। अत: संगच्छध्वं संवदध्वं—इस वेदादर्श को दृढ़तापूर्वक स्थापित करने तथा हृदयंगम करने का वेद ने जो पूर्व मन्त्र में उपदेश दिया, उसी महान् सन्देश को वह अन्य मन्त्र में प्रकारान्तर से निम्न प्रकार प्रस्तुत कर रहा है—

उन्नीसवां सूत्र-मन्त्र (१९)

येन देवा न वियन्ति नो च विद्विषते मिथ:।
तत्कृण्मो ब्रह्म वो गृहे संज्ञानं पुरुषेभ्य:।।

(अथर्व कां० ३ । सू० ३० । मं० ४)

हे स्त्री पुरुषो! अच्छी प्रकार समझो, सोचो और देखो कि इस सृष्टि की रचना अनेक देवों-सृष्टि के दृश्य एवं अदृश्य तत्त्वों से हुई है। परन्तु वे देव-तत्त्व कभी आपस में विरोधी बनकर इस सृष्टि का संहार नहीं करते।

सृष्टि के तत्त्वों में देव व्यवहार

इस सृष्टि में जल और अग्नि दोनों परस्पर विरुद्ध गुण धर्म वाले हैं, परन्तु वे एक-दूसरे पर कभी आक्रमण नहीं करते। इसी प्रकार चैतन्य सृष्टि में भी पुरुषों में जो देव कोटि के विद्वज्जन हैं, वे अपनी दिव्यता, विद्वत्ता एवं उपकारी शुभ गुणों से समाज या राष्ट्र के जनों को सुपथ पर ले जाते हैं। ऐसे ऋषि, मुनि, विद्वान्, देवजन परस्पर कभी द्वेष नहीं करते और न झगड़ते हैं। उसी प्रकार से तुम सबको भी उनका अनुसरण करते हुए अपने-अपने घरों में सर्वत्र वैर-विरोध भाव से रहित प्रीतिपूर्वक यथोचित्त वर्तना चाहिए। इस प्रकार यह मन्त्र प्रेमपूर्वक व्यवहार करने के लिए, परस्पर मिलकर रहने के लिए मानव जाति को उपदेश दे रहा है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

समाजवाद के लिए सर्वत्र मित्र की भावना

समाज की सबसे छोटी इकाई घर है। घरों में रहने वाले परस्पर प्रेम से रहें और गृहों से-परिवारों से-निर्मित होने वाले समाज में प्रत्येक गृही का व्यवहार दूसरे गृहों तथा परिवारों से किस प्रकार का हो, इसके लिए वेद सन्देश दे रहा है—

बीसवां सूत्र-मन्त्र (२०)

मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे।
मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे॥

(यजु० अ०३६। मं०१८)

मैं मित्र की प्रेमपूर्ण दृष्टि से सब प्राणियों को देखूँ और मैं भी सब प्राणियों के द्वारा मित्रतापूर्ण प्रेम दृष्टि से देखा जाऊँ। अर्थात् न मेरा कोई शत्रु हो और न मैं किसी का शत्रु बनूं। इस प्रकार की भावना परस्पर होनी चाहिए। तभी समाज में भ्रातृ-भाव, मैत्री, प्रीति, सौजन्य, सहानुभूति, सहृदयता, समान वृद्धि एवं सर्वाभ्युदय-कारी भावनाएँ वृद्धि को प्राप्त कर सकती हैं।

इस भावना की और भी व्यापक दृष्टि निम्न मन्त्र में प्रकट हो रही है—

सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु।

(अथर्व ०कांड१९। सूक्त १५। मं०६)

सब दिशाओं में सर्वत्र प्रीति देने वाले, सहयोग देने वाले मित्र ही मित्र हों। कहीं, किसी भी दिशा में स्थान में, काल में मेरे विरोधी न हों, क्योंकि मैं सबके साथ पूर्व प्रतिपादित मन्त्र के आदर्श पर आरूढ़ होकर प्रेममय व्यवहार करता हूँ। सबको मैं अपना समझता हूँ और वे सब भी मुझे अपना समझें इसी प्रकार का व्यवहार करता हूँ।

साम्यवाद के लिए सर्वत्र आत्मवत् भावना

ये समाजवाद एवं साम्यवाद की उच्च भूमियाँ हैं। इन्हीं की

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

और जब जन-समाज या व्यक्ति बढ़ते जाते हैं, तब उनकी और भी उच्चतर स्थिति हो जाती है, जैसा कि निम्न वेद मन्त्र में वर्णित है—

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्नेवानुपश्यति ।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विचिकित्सति ॥

(यजु० अ०४० । मं०६)

जो सब प्राणियों को स्वात्मवत्, प्रीति से अपने में ही अनुभव करता है और सब प्राणियों में आत्मवत् व्यवहार को स्थापित करता है, उससे छिपा हुआ, भेदभाव किसी का नहीं रहता। ऐसी अभेद स्थिति या अभिन्न स्थिति जब व्यक्ति की समाज में और समाज की व्यक्ति में हो जाती है, उस समाज में और उस समाज के व्यक्तियों में दैवी भावनाएँ जाग्रत हो जाती हैं और सर्वत्र आनन्द ही आनन्द की अनुभूति होने लगती है।

साम्यवाद के लिए एकत्व भावना

इस अवस्था के लिए :—

यस्मिन्त्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः ।
तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः ॥

(यजु०अ०४० । मं०७)

जो सब प्राणियों को अपने समान जानता है, वह एकत्व अनुभव करने वाला शोक और मोह के दुस्तर सागर से पार हो जाता है। फिर शोक और मोह उस स्थितप्रज्ञ की आत्मा एवं अन्तःकरण को किसी भी प्रकार विचलित नहीं कर सकते।

मोह से अविद्या एवं अन्याय युक्त कर्म होते हैं और शोक से दुःख, अकर्मण्णता एवं विवेकशून्यता होती है। अतः संसार के समस्त प्राणियों के साथ एकत्व की भावना स्थापित करने से समाज शोक और मोह रहित हो सकता है। शोक और मोह से रहित समाज में ज्ञान और आनन्द का संगम होने लगता है। अविद्या एवं अकर्मण्यता से रहित वह समाज विकासशील हो जाता है। अतः समाज को

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

उत्तरोत्तर उच्च स्थिति में लाना चाहिए।

साम्यवादी जीवन की झांकी

आदर्श समाजवाद के स्थापन के लिए वेद और भी उत्तम उपदेश दे रहा है—

इक्कीसवां सूत्र-मन्त्र (२१)

समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति ॥

(ऋ०मं०१० । सूक्त १९१ । मं०४)

संसार में बल की असमानता से एक समाज या वर्ग दूसरे समाज या वर्ग पर प्रभुत्व करने लगता है। अतः इस दोष को दूर करने के लिए हम सबके बल सामर्थ्य समान होने चाहिएँ।

शक्ति संतुलन की आवश्यकता

आज जो युद्ध की विभीषिका संसार को त्रस्त एवं चिन्तित कर रही है उससे बचने का एक मात्र प्राथमिक उपाय—समानी व आकूतिः—हमारे बल—सेना का बल, अस्त्र-शस्त्र का बल, आर्थिक बल, बौद्धिक बल—समान हों।

आज शान्ति के लिए निरस्त्रीकरण योजनाएँ बन रही हैं, जिनका तात्पर्य यही है कि बल की विषमता नहीं होनी चाहिए। बल की विषमताओं से ही अभिमान की भावनाओं का उदय होता है। अभिमान की भावना से अन्याय की प्रवृत्तियों का जन्म होता है, जिससे अशान्ति, अविश्वास एवं युद्ध की भावना व्याप्त हो जाती है।

शक्ति संतुलन से शांति

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

का होना अनिवार्य है, जिससे किसी से कोई पिछड़ा हुआ या दबा हुआ न रहे। सब के बलों की उन्नति समान रूप से हो। प्रत्येक अपने बल की उन्नति करता हुआ दूसरे को भी जब तक बलवान् न बना ले तब तक संतुष्ट न रहे ऐसी भावना सबमें होनी चाहिए।

यदि समाज के व्यक्ति असमान बल वाले होंगे, तो समाज का बल रूप में उत्थान समुचित न होगा। वह समाज दूसरे बलवान् समाज के प्रहारों को सहन भी नहीं कर सकेगा। अतः समाज में बल की समानता के भाव की जागृति होनी चाहिए। इसलिए समानी व आकूतिः—इस वेद वाक्य को क्रियान्वित करना होगा।

कपट नीति का त्याग एवं हृदयों का मिलाप

उपरोक्त भावना तभी हमारे अन्दर जागृत होगी जब कि समाना हृदयानि वः—इसके अनुसार हम सब अपने हृदयों को भी एक-दूसरे के इतने निकट ले आयें कि उनमें जो असमानता है, वह दूर हो जाए और हम समान हृदय वाले प्रीतियुक्त हो जायें।

निःशस्त्रीकरण यदि बाह्य मन से होता रहे और हृदयों में द्वेष की ज्वाला धधकती रहे, तो ऐसा निःशस्त्रीकरण स्थायी नहीं रह सकता तथा शान्ति शंकित ही रहेगी। ऐसी स्थिति में किसी भी समय भयंकर विस्फोट की आशंका बनी रहती है। अतः समानी व आकूतिः—के लिए दूसरा प्रयत्न समाना हृदयानि वः हम [सबके हृदय समान व प्रीतिपूर्ण हों, यह होना आवश्यक है।

मन की एकता

३. हृदयों की समानता के लिए भी वेद कहता है कि वह तब तक नहीं होगी जब तक हमारी चिन्तन, मनन या विचार शक्तियों में एकत्व एवं प्रेम की सद्भावना नहीं हो। अतः वेद कहता है—

समानमस्तु वो मनः

जो चिन्तन या विचारों का उत्पादक मन हमारे में है, वह भी

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

समानता की, प्रेम की विचारधाराओं का जनक हो।

इस प्रकार निःशस्त्रीकरण के लिए उत्तरोतर तीन बातों का पालन करने का इस मन्त्र में उपदेश है जिससे सब लोग स्वाधीन एवं स्वतन्त्र होकर सदा सुखी रह सकें। यदि हमारे मन में कुछ है और व्यवहार में अन्य ही कुछ है तो बाह्य प्रतिबन्धों या समानताओं और बाह्य प्रेम का आचरण स्थायी नहीं रह सकता। अतः हमारे हृदय एवं मन भी परस्पर मिले हुए एकरूप होने चाहियें।

सर्वत्र समानता की जागृति

जब हम सबके मन एवं हृदय एक होंगे तो हमारा बल भी समान होगा। इसी मार्ग का अनुसरण करनें से समाज में स्थिर सुख एवं शान्ति रह सकती है। इसी भावना को और भी सूक्ष्म और उच्च स्थिति में हृदय पटलों पर अंकित करने के लिए वेद का निम्न मन्त्र उपदेश दे रहा है—

बाईसवां सूत्र--मन्त्र (२२)

समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम्।
समानं मन्त्रमभि मन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि॥
(ऋ०मं०१० । सूक्त१९१ । मं०३)

समानो मंत्रः

हम सबके विचार समान हों। सब लोग सत्य को सत्य ही मानें और असत्य को असत्य ही जानें। सत्य और असत्य की भिन्न मान्यताओं से नाना मत, सम्प्रदाय और परस्पर विपरीत, विरुद्ध कार्यों का प्रवाह चलने लगता है। एक लक्ष्य नष्ट हो जाने से समाज में अनेक लक्ष्य भिन्नता को उत्पन्न कर देते हैं। सत्यासत्य के निर्णय के अभाव की क्षमता न होने से अपने ही विचारों को तर्क

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

विद्या, विज्ञान एवं सृष्टि नियमों की कसौटी पर न कसने से अज्ञान एवं अन्धविश्वास के कारण ये सब विभिन्नतायें फैलती हैं।

इन्हीं के कारण विचारों की विषमता से अनेक मतमतान्तर, अनेक राजनैतिक दल, अनेक प्रकार के शासनतन्त्र, अनेक प्रकार के वर्ग-भेद आदि के रूप में विभिन्नताओं का जन्म हो जाता है। ये विभिन्नतायें ही द्वेष, विरोध, अशान्ति, युद्ध आदि की जननी हैं। अतः समानो मन्त्रः हमारे विचारों में समानता, सामाञ्जस्य, परस्पर अनुकूलता सम्पादन का मार्ग समाज को अपनाना चाहिए।

२. समितिः समानी

विचार वैशिष्ट्य एवं विचार प्रणाली की भिन्नताओं से विचार अनेक प्रकार से करने की शक्ति तो समाज में होनी चाहिए, परन्तु वे सब एक लक्ष्य की पूर्त्ति करने वाले हों, जिससे सब को अपने हित के अनुकूल बराबर-बराबर सुख समान रूप से प्राप्त हों। विषमता न हो। हमारी जो विविध कार्यों के सम्पन्न करने के लिये समितियां, उपसमितियां, संघ, संगठन आदि हों वे भी समानता उत्पन्न करने वाली हों जिससे हममें विद्या, बुद्धि, बल, पराक्रम, व्यवहार, सुखादि की समान रूप से एक विशाल परिवार की अनुभूति के अनुरूप हो।

३, ४ समानं मनः सह चित्तमेषाम्

हमारे मन और चित्त एक सदृश—समान—हों। वेद के आदेशानुसार केवल बाह्य सुखसाधनों के समान रूप से वितरित करने से ही समाज में सुख और शान्ति नहीं हो सकती, जब तक इस मन्त्र के आदेशानुसार विचार, गोष्ठी, सभा तथा हमारे मन और चित्त भी परस्पर एक से एक गुंथे हुए, प्रीतियुक्त न हों।

५. इतना ही नहीं अपितु मन्त्र के उत्तरार्ध भाग द्वारा परमात्मा आदेश दे रहा है कि मैं तुम सब को समानता के विचारों से

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अभिमन्त्रित करता हूँ और समान रूप से भोगपदार्थों को धर्म और न्याय की रीति से समिति के निश्चय से अर्थात् सर्वानुमति से भोग को प्राप्त करो, यह आदेश दे रहा हूँ। इस प्रकार भोग का चोरी से उपयोग लेने की प्रवृत्ति नष्ट होगी और भोग की अनुचित स्पर्धा भी अनुत्साहित होगी।

समान भोग प्राप्ति

भोगों के समान वितरण के लिये वेद आदेश देता है—

तेईसवां सूत्र-मन्त्र (२३)

समानि प्रपा सह वोऽन्नभागः समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि ।
सम्यञ्चोऽग्निं सपर्यतारा नाभिमिवाभितः ।।

(अथर्व कां० ३ सूक्त ३० । मं० ६)

समानी प्रपा

हे मनुष्यो ! तुम्हारे पीने के जल के संग्रह स्थान एवं स्नानादि के स्थान एवं उनके व्यवहार एक समान सुव्यवस्थित हों। वर्ग, श्रेणी, पद, वेतन आदि के मान से इनमें भेद नहीं होना चाहिए। सबके लिए एक सदृश व्यवस्था हो, परन्तु वह व्यवस्था श्रेष्ठ कोटि की हो।

सहवोऽन्नभागः

तुम्हारे खान-पान, रहन-सहन एक समान हों। समाज में इस बारे में विषमता न हो। सब को यथासमय भोजन, जल, स्नानादि की व्यवस्था हो। कोई भूखा, प्यासा न रहे। भोजन में समानता का तात्पर्य अनुकूलता से भी है। अपने स्वास्थ्य एवं अवस्था के अनुसार जो अनुकूल भोजन है, वह अपने स्वास्थ्य की समानता की

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai
रक्षा करने वाला होता है। अतः भोजन पानादि की समानता अनेक प्रकार से होनी चाहिए।

समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि

परमात्मा ने हम सब को राष्ट्र या समाज के कार्य वहन करने के लिए एक समान बन्धन या दायित्व से युक्त कर रखा है। अतः साथ रहने की और साथ व्यवहार की भावना से—परस्पर सहकारिता के आदर्श से—पृथक् नहीं होना चाहिए।

सम्यञ्चोऽग्निं सपर्यतारा नाभिमिवाभितः

जिस प्रकार चक्र के आरे चारों ओर से अपनी नाभि की ओर संलग्न रहते हैं, उसी प्रकार समाज या राष्ट्र के जीवन को जो अग्नि रूप से कार्यसिद्ध करने वाले मूल सिद्धान्त हैं, उनसे सब मिलकर एक-दूसरे के हित को सिद्ध किया करें।

भोग-वैषम्य अपराध है

उपरोक्त मन्त्रों से स्पष्ट है कि हम सब को परमात्मा ने समानाधिकार दिये हैं और सहकारिता से अपने जीवन-यापन करने का उपदेश दिया है। अतः यदि कोई व्यक्ति समाज में विषमता को उत्पन्न करता है, तो वह परमात्मा के आदर्श, उपदेश या नियमों का उल्लंघन करने वाला होने से समाज के प्रति दोषी है, अपराधी है। समाज के हित को प्राथमिकता न देकर अपने स्वार्थ को प्रमुखता देना ही अपराध है। स्वार्थ ही सब पापों की, अपराधों की, भ्रष्टाचारों की जननी है। स्वार्थ वृत्ति से जीवन-यापन करने वालों के लिए वेद में निन्दापरक अर्थों में लिखा है—

केवलाघो भवति केवलादी।

(ऋ० १०। ११७।६)

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

जो स्वार्थपरायण व्यक्ति केवल अपने लिए खाते-कमाते हैं, वे समाज में विषमता उत्पन्न करके, अपने स्वार्थ की ही तृप्ति के लिए प्रयत्न करने वाले होने से पापी हैं। वे पाप का भोजन करते हैं और पाप से परिपुष्ट होकर अन्यों में भी स्वार्थपरायणता की भावना को उद्दीप्त करने के साधन बन जाते हैं।

कृपण पूंजीपति साम्यवाद के शत्रु हैं

अतः वेद कहता है—

पाहि नो अग्ने रक्षसः पाहि धूर्तेरराव्णः

(ऋ० १। ३६। १५)

हे तेजस्वी राष्ट्र नेता! हमारी दुष्ट, हिंसाशील व्यक्तियों से रक्षा करो। दुष्ट हिंसाशील व्यक्ति स्वार्थी होता है। वह सार्वजनिक हितों की हिंसा करने वाला है। अपनी दुष्ट वृत्तियों से, कुटिल चालों से वह सर्वोदयी भावना को अनेक प्रकार से उदित न होने देने के लिए प्रयत्नशील रखता है, अतः वह परम धूर्त है, क्योंकि वह अदानशील है। दानशील दूसरों को अपने बल, धन, ऐश्वर्य, अन्न समृद्धि से सहायता करता है। परन्तु अदानशील केवल अपने स्वार्थ की पूर्ति करता है और दूसरों के हितों की उपेक्षा करता है। अतः अदानशीलता समाज में न हो। सब दानशील बनें, जिससे सब की उन्नति हो सके। ऐसे व्यक्तियों से समाज की रक्षा करनी चाहिए। उनकी प्रतिष्ठा भी समाज में नहीं करनी चाहिए। जो धनी होकर दानशील नहीं हैं, उनके लिए तो वेद कहता है :—

अपघ्नन्तो अराव्णः।

(ऋ० ६। ६३। ५)

अदानशीलों को समाज में से नष्ट कर देना चाहिए। अदानशील परिग्रही होता है। परिग्रह वृत्ति से लोक कर्म दूषित होते हैं, परन्तु परिग्रह से योग भी नष्ट होता है। विभिन्न स्थितियों में विभिन्न प्रकार के एवं विभिन्न मात्रा में अपरिग्रह की आवश्यकता है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai
अपरिग्रह पर आचरण दानवृत्ति से होता है। दानवृत्ति से देवत्व जागृत होता है। दान या त्याग मन की उच्च स्थिति है। अदान-शीलता को दान से जीतना चाहिए। इसके लिए सामवेद जीवन की सफलता के लिए सर्वप्रथम यही उपदेश करता है—दानेनादानम्-अदानशीलता का महान् कठिन सागर है, उसे पार करने के लिए दान का पुल बनाकर उसके पार जाना होगा।

कृपण पूंजीपतियों के समर्थक दण्डनीय हैं

जो समाज दानशील होगा, उसमें परस्पर प्रेम व सद्भावना होगी। ऐसे समाज में इसके विपरीत वृत्ति वाला कोई न हो, इस-लिए वेद ने कहा—

चौबीसवाँ सूत्र-मन्त्र (२४)

ईशत माघशंसः। (यजुः अ० १। मं० १)

कोई पापी का—पाप की वृत्तियों का—समर्थक, प्रशंसक न हो। यह अनैतिक कार्य है। असामाजिक वृत्ति है। विषमता का जनक है। अतः ऐसे कार्यों और वृत्तियों के प्रति किसी में आदर भाव न हो, जिससे कोई ऐसे असामाजिक कार्यों को अपनाने की इच्छा भी न करे। यदि पापमय वृत्तियों को समर्थन प्राप्त होगा या पापमय प्रवृत्ति में रत पापियों की प्रशंसा होगी, तो अनार्यों का प्रभुत्व समाज पर हो जाने से समाज अनेक प्रकार के असामाजिक रोगों से ग्रस्त हो जायेगा।

दोषों से रक्षा

समाज को इस प्रकार के दोषों से बचाने के लिए वेद कहता है:—

(१) मा अहिर्भूः। (यजुः अ० ६। मं० १२)

समाज का कोई व्यक्ति सर्प न बने अर्थात् सर्प के समान कुटिल

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

चाल वाला, अपने मुख, श्वास एवं दृष्टि में विष को धारण करने वाला न बने। जिसके मुख में विष है, वह सदा विषयुक्त वाणी का ही प्रयोग करेगा। जिसके श्वास में विष होगा, उसके प्राण और मन से होने वाली क्रियाओं और विचारों में भी विष भरा होगा। ऐसे विषधर व्यक्ति समाज में विषाक्त वातावरण बनायेंगे और समाज के लिए घातक ही सिद्ध होंगे।

जिसकी दृष्टि में विष होगा, उसकी दोष दृष्टि पाप की वासना से लिप्त रहेगी। विषयुक्त हिंसक स्वभाव से दूसरों को नष्ट करने की प्रवृत्तियाँ फैलती हैं। अतः—मा—अहिर्मू:—के आदर्श पर समाज को चलना-चलाना चाहिए। सर्प के कान नहीं होते। अतः जो लोग समाजों में सर्पवत् अपनी वाणी, प्राण, मन एवं दृष्टि विषयुक्त रखते हैं, वे अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए घातक प्रवृत्तियों को जन्म दे कर उनकी सफलता में इतने तल्लीन हो जाते हैं कि वे कानों से रहित हो जाते हैं। वे दूसरों की बातों को सुनना ही नहीं चाहते। वे सर्वहितकारी बातों पर ध्यान ही नहीं देना चाहते और न उनपर किसी प्रकार से विचार करते हैं। जिस प्रकार अमृत तुल्य दूध सर्प के मुख में जाकर उसके विष का ही वर्धन करने वाला हो जाता है, उसी प्रकार अमृत तुल्य हितकारी वचन सर्प वृत्ति वाले मनुष्यों में विष रूपी विकार की वृद्धि करते हैं। यही उनकी कुटिल गति है कि वहाँ अमृत भी विष हो जाता है। ऐसे असामाजिक व्यक्ति समाज के लिए विषधर सर्प तुल्य हैं। इसलिए वेद ने कहा कि सर्प न बनो।

जहाँ समाज के लिए सर्प प्रवृत्ति वाले व्यक्ति नहीं चाहिएँ, वहाँ अन्य इसी प्रकार के और भी दोषयुक्त व्यक्ति हैं, जिनके लिए वेद ने कहा—

(२) मा पृदाकुः। (यजुः अ० ६। मं० १२)

समाज का कोई व्यक्ति पृदाकु अर्थात् अजगर, बिच्छू, व्याघ्र एवं हाथी की जो वृत्तियाँ हैं, उन्हें अपनाने वाला न बने। अजगर भी विषधर है। वह निरुद्यमी, आलसी एवं अकर्मण्य होता है। उसे अपने स्थान पर ही भोजन मिल जाये, तो कर लेता है, अन्यथा

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

नहीं। जो उसके समीप पहुँच जाता है, उसे छोड़ता नहीं है, अपितु निगल कर उसके अस्तित्व को ही समाप्त कर देता है। समाज को ऐसे निरुद्यमी, आलसी तथा दूसरों का धन एवं अधिकार हड़पने वाली वृत्तियों के व्यक्तियों की आवश्यकता नहीं।

परिश्रमी बनो

वेद तो परिश्रम करने की प्रेरणा देता है और कहता है—

भूत्यै जागरणम्। (यजुः अ० ३०। मं० १७)

उन्नति के लिए दक्षता एवं श्रम का अवलंबन करना चाहिए। जो व्यक्ति या समाज जागृत रह कर परिश्रम करता है, वह ऐश्वर्य, उन्नति एवं आनन्द को प्राप्त करता है, और—

अभूत्थै स्वप्नम्। (यजुः अ० ३०। मं० १७)

अवनति के लिए, आलस्य, सुस्ती, नींद, दीर्घ काल तक कर्तव्य-रहित होकर निरर्थक विचारों के चिन्तन में समय व्यतीत करने का मार्ग है। जो स्वप्न के समान चिन्तनादि में मग्न रहता है और कर्तव्य से विमुख होता है, उसकी उन्नति हो ही नहीं सकती तथा उसे ऐश्वर्य की भी प्राप्ति नहीं हो सकती। अतः वेद पुनः उन्नति के पथ का निम्न शब्दों में संकेत दे रहा है।

वृद्ध्यै अपगल्भम्। (यजुः अ० ३०। मं० १७)

उन्नतिशील व्यक्ति को चाहिए कि वह गर्वहीनता का अवलंबन करे। व्यर्थ के गर्व को धारण करने वाला व्यक्ति किसी से कुछ ग्रहण करने में, सीखने में असमर्थ हो जाता है। शिष्य जब गर्वहीन होकर गुरु के पास जाता है, तभी वह गुरु से विद्या ग्रहण कर सकता है। धन की कामना वाला व्यक्ति जब गर्वहीन होकर दूसरे के पास जाकर धन की याचना करता है, तभी उसे धन की प्राप्ति हो सकती है। इसी प्रकार व्यापारी, शिल्पी एवं श्रमकर्त्ता भी जब तक अपने-अपने प्रतिकूल गर्व को छोड़ कर अपने कार्य में रत नहीं होते, तब तक सफलता नहीं मिल सकती। अतः ऐश्वर्य एवं उन्नति के लिए सतर्क, कर्त्तव्यशील, दक्ष एवं श्रम करने में गर्वरहित हो कर जो कार्य

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

करेगा, वही सफलता प्राप्त करेगा।

परिश्रम से श्रेष्ठ फल प्राप्ति

इस श्रम के फल को वेद कह रहा है:—

सहसस्पुत्रो अद्भुतः। (यजुर्वेद अ० ११। मं० ७०)

बल का, परिश्रम का जो फलरूपी पुत्र है, वह अद्भुत शक्ति, सुख और आनंद दायक है। जिस प्रकार पुत्र से अपने परिवार की समृद्धि, ऐश्वर्य एवं सुख होते हैं, उसी प्रकार परिश्रम के जो विविध प्रकार के फल, परिणाम आदि हैं उनसे हमारे सुख एवं ऐश्वर्य की वृद्धि होती है। जिस प्रकार के क्षेत्र में श्रम किया जायेगा, उसी प्रकार के फल की भी प्राप्ति होगी और जितना परिश्रम युक्ति एवं विचारपूर्वक किया जायेगा, उतनी ही अधिक सफलता भी प्राप्त होगी। अतः अजगर रूपी निरुद्यमी वृत्तियों को धारण न करने के लिए—मा पृदाकुः—का उपदेश किया।

समाज में बिच्छू और भेड़िये बनकर मत रहो

पृदाकु का अर्थ बिच्छू भी है। बिच्छू भी विष को धारण किये रहता है। वह अपने तीव्र डंक से, उसे बचाने वाले साधु-सज्जन पुरुष पर भी निर्दयतापूर्वक प्रहार करता है। चाहे कोई कितना ही उसके जीवन की रक्षा करे, फिर भी उसमें यह ज्ञान उत्पन्न नहीं होता कि मैं अपने पर उपकार करने वाले को, अपनी रक्षा करने वाले को तो डंक न मारूं। वह महाकृतघ्न होता है। सदा डंक उठाये ही रहता है। अतः समाज को बिच्छू वृत्ति वाले मनुष्य भी नहीं चाहिएं।

पृदाकु का अर्थ व्याघ्र भी होता है। व्याघ्र, भेड़िया आदि दूसरों पर अचानक, धोखा देकर आक्रमण करने में प्रसिद्ध हैं। अतः व्याघ्र, भेड़िये आदि के समान अचानक अपने ही व्यक्तियों पर आक्रमण करके उन्हें अपना भोग्य बना लेने वाली प्रवृत्तियों के

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai
व्यक्तियों की जन-समाज में आवश्यकता नहीं। समाज में अर्थलोलुप भेड़िये एवं व्याघ्र अपना आर्थिक आक्रमण करके भावों को बढ़ा देते हैं। बाजार में वस्तु का अभाव बताकर भ्रष्टाचार करने लगते हैं।

कामी, क्रोधी, लोभी एवं अहंकारी, भेड़िये एवं व्याघ्र की वृत्ति से अपनी पैशाचिक वासनाओं की तृप्ति के लिए क्रूर एवं निर्लज्ज हो कर शिकार खेलते हैं। ऐसे लोग जो केवल अपने भोग्य के लिये दूसरों का प्राणहरण करने वाले हैं, वे समाज में नहीं होने चाहिएं।

पृदाकु का अर्थ हाथी भी है। हाथी सदृश भी न बनने के लिए वेद आदेश देता है। हाथी देखने में तो विशालकाय प्रतीत होता है, किन्तु उसमें शरीर की अपेक्षा बुद्धि अत्यल्प होती है। दृष्टि भी उसकी छोटी होती है। वह काम के वशीभूत होकर अपनी स्वतन्त्रता को भी सदा नष्ट कर देने वाला होता है। अतः वेद ने—मा पृदाकुर्भूः—का जो उपदेश किया, उसका पालन करके हम समाज को समुन्नत कर सकते हैं।

दोषों का त्याग करो

इसी प्रकार पशु-पक्षियों के दृष्टान्त से अपनी वृत्तियों को सुधारने के लिए निम्न मन्त्र में भी वर्णन मिलता है :—

उलूकयातुं शुशुलूकयातं जहि श्वयातुमुत कोकयातुम्।
सुपर्णयातुमुत गृध्रयातुं दृशदेव प्रमृण रक्ष इन्द्र॥
(ऋ० मं० ७। सू० १०४। मं० २२)

(१) उलूकयातुं जहि—उल्लू की वृत्ति, वर्त्तन या सदृश जीवन यापन की वृत्तियों को, चलन को छोड़ो।

(२) शुशुलूक यातुं जहि—भेड़िये के सदृश चलन को छोड़ो।

(३) श्वयातुं जहि—कुत्ते के सदृश चलन को छोड़ो।

(४) कोकयातुं जहि—चकवा-चकवी के समान चलन को छोड़ो।

(५) सुपर्णयातुं जहि—गरुड़ के चलन को छोड़ो।

(६) गृध्रयातुं जहि—गीध की वृत्ति को भी छोड़ो।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

(७) **दशदेव प्रमृण रक्ष इन्द्र**—हे जीव, तू इन वृत्तियों को जैसे सिल पर पीसने वाला पत्थर, रगड़ कर चूर्ण-चूर्ण कर देता है, उसी प्रकार नष्ट कर। ये वृत्तियाँ समाज के किसी व्यक्ति में जागृत न होने पायें।

(१) उल्लू की चाल एवं कार्यप्रणाली विचित्र है। दिन में तो वह देखने में असमर्थ है। दिन के प्रकाश का वह शत्रु है। अन्धकार उसे प्रिय है। ऐसी प्रवृत्ति के अनुसार वर्त्तने वाले व्यक्ति समाज में न हों। अन्धकार में कार्य करने वाला, अनेक संशयों एवं शंकाओं से युक्त रहता है। उसे निश्चयात्मक ज्ञान होने में कठिनाई रहती है। अन्धकार में से न जाने कौन किस ओर से कौन आक्रमण कर दे। न जाने किसी गर्त्त में गिर जाये और जीवन संकट में पड़ जाये। अन्धकार में चलने वाला किसी पेड़ या पत्थर से टकरा जाता है। इत्यादि अनेक प्रकार के कष्ट अन्धकार में चलने वाले को होते हैं। अतः उल्लू समान मोहवृत्ति को जन समाज या व्यक्तियों को नहीं अपनाना चाहिए।

(२) भेड़िया क्रोध वृत्ति का, क्रूर वृत्ति का तथा अपहरण वृत्ति का परिचायक है। समूह में से यदि कोई बिछुड़ जाये, तो भेड़िया उसपर आक्रमण कर देता है और उसका अपहरण कर लेता है। जिसका अपहरण करता है उसे मार कर खा जाता है और यदि कभी उसका पालन भी करता है, तो उसे अपने जैसे स्वभाव का बना लेता है।

कई बार मनुष्यों के बालक भी भेड़ियों की माँदों से प्राप्त किये गये, जो भेड़िये के सदृश व्यवहार करते थे। इस प्रकार की वृत्तियाँ मनुष्यों में न हों कि जो बिछुड़े हुए को मिलने न दें और उन्हें इतना बिछुड़ा दें कि वे अपने उच्च गुण कर्म स्वभाव को त्याग कर पशुवत् व्यवहार करने लगें। अतः मनुष्यों को अपना व्यवहार भेड़िये सदृश न बनाने का वेद ने उपदेश दिया।

(३) कुत्ते की वत्ति परम दासता, चापलूसी और स्वजाति वाले से द्वेष की है। इस वृत्ति को भी उन्नतिशील समाज के व्यक्तियों को

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

कभी भी ग्रहण नहीं करनी चाहिए। समाज में ऐसी वृत्ति के मनुष्यों से समाज की उन्नति तो कभी नहीं हो सकती, अपितु ऐसे लोग स्वार्थवश समाज के हित की अवहेलना करके उसे हानि पहुँचायेंगे।

जो लोग रोटी और चाँदी के चन्द टुकड़ों पर आत्म समर्पण करने वाले हैं, ऐसी वृत्ति के व्यक्तियों से सदा सावधान रहना चाहिए। ऐसे व्यक्तियों पर कभी विश्वास नहीं किया जा सकता। कुत्ते की वृत्ति को समाज में कभी किसी प्रकार प्रोत्साहित नहीं करना चाहिए। यह दासता की वृत्ति है। यह वृत्ति अत्यन्त असामाजिक है। अतः कुत्ते की वृत्तियों का अध्ययन करके तत्सदृश त्यागने योग्य वृत्तियों को त्यागना चाहिए।

(४) इसी प्रकार चक्रवाक की जो यह वृत्ति है कि जब रात्रि में सब अपने परिवार में एकत्र रहते हैं और एक-दूसरे की रक्षा करके आनंद की निद्रा में मग्न रहते हैं, उस समय चकवा-चकवी दोनों एक-दूसरे को छोड़ कर एक-दूसरे से दूर हो जाते हैं तथा मिलन की प्रतीक्षा में चिन्तित रहते हैं। यह कार्य भी असामाजिक है।

रात्रि को आवारा बन कर घूमना, परस्पर परिवार से बिछुड़ना ठीक नहीं है। कोक का अर्थ चक्रवाक पक्षी के अतिरिक्त मेंढक भी है। मेंढक अनियंत्रित एवं अस्थिर वृत्ति के होते हैं। अनियंत्रित तथा अस्थिर रहने और अशान्ति उत्पन्न करने की इनकी ख्याति है। यदि कोई चाहे कि मैं एक तराजू के पलड़े में एक सेर जीवित मेंढकों को बिना बन्धन के तोल लूँ, तो वह कदापि सफल नहीं हो सकता। वे स्थिर नहीं रह सकते। उछलने-कूदने का उनका स्वभाव है। इस उछलने-कूदने की वृत्ति के कारण कभी सन्तुलन नहीं बन सकता।

इसी प्रकार अस्थिर, अनियंत्रित, सदा उछल-कूद में ही समय व्यतीत करने वाले अपने परिवार एवं समाज के लिए कष्टदायक होते हैं। इसी प्रकार मेंढकों का अशान्ति का भी स्वभाव है। एक मेंढक चुप हो जाये, तो दूसरा शोर मचाने लगता है। अतः अशान्ति का भी स्वभाव त्याज्य है।

(५) गरुड़ पक्षिराज है। वह सुपर्ण है। अच्छे पंखों वाला है। अपने पंखों के कारण वह ऊँची उड़ानें और सबसे देर तक की उड़ानें

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

भरने में अपने को प्रसन्न अनुभव करता है। अन्य कोई पक्षी उसके समान ऊँची और देर तक उड़ान नहीं भर सकता। उसे अपनी ऊँची और तेज उड़ान पर अभिमान रहता है।

उसी प्रकार गरुड़ पक्षी सर्पों का भक्षक होने से अभिमान में रहता है कि पृथिवी को निर्विष करने वाला मैं ही हूँ। उसे यह नहीं मालूम कि जिसने विषधर सर्पों को बनाया है, उसी ने गरुड़ को भी बनाया है। उसी की दी हुई सामर्थ्य से इसमें भयंकर सर्पों का भक्षण करके पृथिवी को निर्विष करने की सामर्थ्य है। अतः बड़ी-बड़ी ऊँची उड़ानें भरने और "मैं ही सब कुछ करने वाला हूँ, मेरे अतिरिक्त अन्य कोई कुछ नहीं कर सकता"—सामर्थ्य पाकर ऐसी अभिमानयुक्त भावना गरुड़ वृत्ति के तुल्य है। इस प्रवृत्ति को छोड़ना चाहिए।

(६) गृध्र की वृत्ति भी छोड़ने योग्य है। गृध्र की दृष्टि बड़ी तीव्र होती है और लोभयुक्त होती है। लोभी व्यक्ति की दृष्टि दूसरों के धन पर गड़ी रहती है। 'मा गृधः कस्य स्विद्धनम्' के आदेश के विपरीत लोभी का आचरण होता है। यही लोभयुक्त गृध्र दृष्टि ही पापाचार का कारण बनती है। लोभः पापस्य कारणम्—यह जो घोषणा की गई है, वह जीवन के व्यवहार दर्शन का सार है।

अतः मानव की पूर्वोक्त अवांछनीय वृत्तियों का उन्मूलन करना चाहिए। इन वृत्तियों के मानव पर आक्रमण होने से उसमें से अच्छी वत्तियों का नाश हो जाता है। ये क्रूर एवं आक्रमणकारी वृत्तियाँ हैं। इनके लिए वेद कहता है—

> यत्ते क्रूरं यदास्थितं तत्त आप्यायतां निष्ट्यायतां
> तत्ते शुध्यतु। (यजुः अ० ६। मं० १५)

तुममें जो ऐसी क्रूर पाशविक, हिंसक वत्तिया हैं, जो उत्तम गुणों को, सार्वजनिक हित को, परस्पर प्रेम एवं सहकारिता को तथा सबकी उन्नति की भावना को नष्ट करने वाली हैं, वे अच्छी प्रकार निवृत्त हों। वे तुम से पृथक् हो जावें, जिससे तुम शुद्ध, निर्मल, सब के ग्रहण करने योग्य, स्वीकार करने योग्य अर्थात् प्रिय बन सको।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

साम्यवाद या समाजवाद में दासता को स्थान नहीं

पूर्वोक्त प्रकार की कुप्रवृत्तियों के तथा इस प्रकार की कुप्रवृत्ति वाले जनों के दास हम या हमारा समाज न बन सके, अतः वेद कहता है :—

पच्चीसवाँ सूत्र-मन्त्र—(२५)

अदीनाः स्याम। (यजु: अ० ३६। मं० २४)

हम अपने जीवन में दीन, दास एवं पराधीन कभी न बनें। हम ऐसी दुष्प्रवृत्तियों के भी दास एवं वशीभूत न हों। मनुष्य वासनाओं के वशीभूत होकर अनेक प्रकार के अनर्थ करने लगते हैं। अतः हम सचेत रहें और ऐसी प्रार्थना करें तथा प्रयत्न करें कि हम किसी भी प्रकार से पराधीन न हों।

निरन्तर उच्चतर स्वराज्य स्थिति के लिए प्रयत्न करें

यतेमहि स्वराज्ये। (ऋ० मं० ५। सू० ६६। मं० ६)

अपनी स्वाधीनता के लिए निरन्तर प्रयत्न करें। हमारा स्वराज्य पहले हमारे शरीर, मन, बुद्धि एवं इन्द्रियों पर होना चाहिए। यदि हमारा शासन, स्वराज्य अपने पर ही स्थापित न हो सका, तो इस शरीर, मन एवं इन्द्रियों से अनुचित, अयोग्य एवं निन्दनीय कर्म भी हो सकते हैं।

यदि हमारा स्वराज्य हमारे अपने ऊपर होगा, तो इन्हीं इन्द्रियों, मन एवं शरीर से शान्ति एवं सुखदायक कार्य सम्पन्न हो सकेंगे और सब को सुख-शान्ति प्राप्त होगी। इसी को वेद में निम्न शब्दों में प्रकट किया है :—

इमानि यानि पञ्चेन्द्रियाणि मनः षष्ठानि मे हृदि ब्रह्मणा संशितानि। यैरेव ससृजे घोरं तैरेव शान्तिरस्तु नः॥

(अथर्व० का० १९। सू० ९। मं० ५)

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ये जो पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ एवं पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं और जो छठा मन है, उनके द्वारा भयंकर—अशुभ—कर्म होते हैं। उन्हीं के द्वारा शान्ति, सुखदायक, शुभ कर्म भी हो।

समाजवाद या साम्यवाद के शासन की झांकी

इस प्रकार के विचारों और आदर्शों पर स्थापित समाज शारीरिक, पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक और आत्मिक दृष्टि से बहुत उन्नत हो सकता है। उसमें विविध शक्तियों का विकास होगा। जब सब समानाधिकार वाले, समान भोग वाले होंगे, तो छल-कपट, राग-द्वेष, असत्य और हिंसा, आलस्य और प्रमाद कहाँ रहेंगे। वह समाज तो—

छब्बीसवाँ सूत्र-मन्त्र—(२६)

सत्येनावृता श्रिया प्रावृता यशसा परीवृता।

(अथर्व० कां० १२। सूक्त ५। मं० २)

(१) सत्य से आवृत रहेगा। सर्वत्र सत्य व्यवहार होने से 'मित्रः सत्यानामधिपतिः' के अनुसार सब परस्पर मित्रवत् स्नेहभाव से वर्त्तन करने वाले होंगे और सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु। (अथर्व० कां० १९। सूक्त १५। मं० ६) का प्रत्यक्ष दर्शन होगा।

(२) सत्य से आवृत उस समाज में जब सब परस्पर विश्वास प्रेम एवं सद्भावना से रहेंगे, सबके हृदय एक होंगे तो उस समय—श्रिया प्रावृता—शोभायुक्त लक्ष्मी से समाज अवश्यमेव व्याप्त होगा जिससे सभी को विषमता के अभाव में अर्थात् समता की स्थिति में शारीरिक एवं मानसिक सुखों की प्राप्ति होगी।

(३) बाह्य समानताओं के होते हुए भी यदि मानसिक दृष्टि से समाज उन्नत न हो और मन समान न हो, तो सब सुखों के साधन होते हुए भी दुःख रहता है। अतः वेद ने पूर्व ही—सहृदयं सांमनस्यनम्—आदि आदर्शों का प्रतिपादन करते हुए जिस समाज के

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

निर्माण का उपदेश दिया वह वास्तव में—श्रिया प्रावृता—शोभा-युक्त लक्ष्मी से युक्त होगा और उसके परिणामस्वरूप—यशसा परीवृता—उत्तम यश से सब ओर से संयुक्त रहेगा। उस समाज को—

स्वधया परिहिता श्रद्धया पर्यूढा दीक्षया गुप्ता
यज्ञे प्रतिष्ठिता लोको निधनम् ॥

(अथर्व० कां० १२। सू० ५। मं० ३)

(१) **स्वधया परिहिता**—अन्नादि पदार्थों के धारण, उत्पत्ति, समृद्धि आदि से सबका हितकारी बनना होगा। अन्न-भोज्य पदार्थों की व्यवस्था करनी होगी।

समाज या राष्ट्र में—स्वधया परिहिता—अन्नादि की पूर्त्ति से सब की व्यवस्था करनी होगी। अन्नहीन राष्ट्र बलहीन और पर-निर्भर होता है। अन्न से समृद्ध समाज या राष्ट्र अपना साम्राज्य अपने देश में तथा बाहर भी स्थापित कर सकता है। इसीलिए वेद ने कहा—अन्नं साम्राज्यानामधिपतिः—अन्न साम्राज्यों का भी अधिपति है। अन्न की इस महत्ता को ध्यान में रखकर समाज एवं राष्ट्र को अन्न की उत्पत्ति में प्रवृत्त होना चाहिए।

(२) **श्रद्धया पर्यूढा**—समाज को सत्य धारण में श्रद्धा से सब ओर से सत्य व्यवहारवान् बनना होगा। सत्य से परस्पर विश्वास बढ़ता है। सत्य से व्यापार-व्यवसाय की भी वृद्धि होती है। सत्य से विद्या का प्रचार और अविद्या का नाश होता है। अतः सत्य से समाज को प्रत्येक क्षेत्र में युक्त होना चाहिए।

(३) **दीक्षया गुप्ता**—विविध प्रकार के समाचारों के प्रचलन, ब्रह्मचर्य, सत्य भाषण आदि व्यवहार से समाज के व्यक्तियों को व्रती बना कर उनमें सद्गुणों को स्थापित करना होगा। अव्रती समाज सदाचारहीन होता है और कठिनाइयों के आने पर वह अपना धैर्य खो देता है। अतः समाज के प्रत्येक व्यक्ति को दीक्षा से युक्त होना चाहिए।

(४) **यज्ञे प्रतिष्ठिता**—विद्वानों के सत्कार की प्रवृत्ति समाज में होनी चाहिए। इस कार्य के लिए पवित्र भावना से, पूजा-सत्कार की

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

भावना से समाज के व्यक्तियों को अग्रसर होना चाहिए। यज्ञ का तात्पर्य जहाँ विद्वानों की सेवा, संगति से है, वहाँ शिल्प विद्या और शुभ गुणों के दान में प्रवृत्ति से भी है। ऐसी प्रवृत्ति को प्रतिष्ठित—प्रचलित करना होगा। यदि समाज के व्यक्तियों में शिल्प विद्या एवं विद्यादि शुभ गुणों को अन्योंको देने की प्रवृत्ति नहीं होगी, तो उन्नति संभव नहीं। अतः विद्या तथा शिल्पादि के शिक्षणादि की निःशुल्क व्यवस्था होनी चाहिए।

(५) इस प्रकार मनुष्य इहलोक का निर्माण करते हुए मृत्यु-पर्यन्त सदा आनन्द में रहने की स्थिति प्राप्त करता है।

अत्यधिक फैशनवाद पतन की ओर ले जाता है

शारीरिक उन्नति की उपेक्षा करके यदि हम सौन्दर्ययुक्त वस्त्राभूषण के द्वारा ही अपने शरीर, आत्मा और मन की उन्नति मानते रहेंगे, तो शरीर क्षीण, बल रहित, निस्तेज एवं सहनशक्ति रहित होंगे और परिणामस्वरूप रोग, शोक, चिन्ता, पराधीनता, परावलंबन आदि का आधिपत्य बना रहेगा।

उस दशा में रोगादि के निवारणार्थ बड़े-बड़े अस्पताल, शोक, चिन्तादि से मानसिक व्याधि—पागलपन आदि से ग्रसितों के उपशमनार्थ बड़े-बड़े पागलखानों का निर्माण होगा। चिन्ता एवं शोक से आत्मघात करने की प्रवृत्ति या अन्य अपराधों की प्रवृत्ति से बड़े-बड़े न्यायालयों, कोतवालियों, हवालातों और कारागृहों का निर्माण होने लगता है।

उपरोक्त चिह्न समाज या राष्ट्र की उन्नति के नहीं हैं, अपितु अवनति के ही हैं। पुलिस जवानों की पंक्तियाँ, वकीलों की कतार, डाक्टरों की कदम-कदम पर उपस्थिति, उन्नति का चिह्न नहीं, अपितु अवनति के ही चिह्न हैं।

बड़े-बड़े अस्पतालों और डाक्टरों की भरमार से प्रतीत होता है कि देश में अधिकतर लोग रोगी हैं। समाज या देश का स्वास्थ्य बिगड चुका है। जब इन बड़े-बड़े अस्पतालों में रोगियों की इतनी

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वृद्धि देखने को मिले कि और भी बड़े अस्पताल की आवश्यकता हो, तो वह रोगी नगर ही बस गया, ऐसा प्रतीत होता है। अस्पताल से एक रोग का उपचार समाप्त हुआ नहीं कि दूसरा रोग उत्पन्न हो जाता है और क्रमशः घर-घर का दृश्य अस्पताल व दवा की दूकान का बन जाता है।

इसके निवारण का उपाय

वेद नें हमें इसके निवारण का उपाय बताया कि—

ओजश्च, तेजश्च, सहश्च, बलं च। (अथर्व कां० १२। सू० ५। मं० ७)

१. पराक्रम, २. तेज, ३. सहनशक्ति और ४. बल इस चतुष्पाद बल को अपने में धारण करना चाहिए। इनकी जो सहायक सामग्रियाँ हैं, उनका भी संग्रह करना चाहिए और जो इनके साधन हैं उनसे युक्त होना चाहिए।

उस स्थिति में बल, तेज, पराक्रम और सहनशक्ति के कारण हमारे शरीर में रोग प्रवेश नहीं कर सकेंगे। जब रोगी ही नहीं होंगे, तो बड़े-बड़े अस्पतालों की आवश्यकता ही न रहेगी। अतः शारीरिक उन्नति के लिए प्रमुख रूप से प्रयत्न समाज में एवं व्यक्तियों में होना चाहिए।

इस कार्य के सम्मुख अस्पताल आदि तो गौण प्रयत्न हैं। गौण कार्यों को प्राथमिकता देना और उसे ही उन्नति समझना समुचित नहीं है। परिस्थितियों का समाधान तो समय-समय पर निकालना आवश्यक है। उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। परन्तु सामयिक परिस्थितियों के समाधान में लक्ष्य की उपेक्षा नहीं होनी चाहिए।

चतुष्पाद बलों की प्राप्ति करें

इस प्रकार वेद ने शारीरिक उन्नति के लिए चतुष्पाद बल (१. ओज, २. तेज, ३. सहनशक्ति, ४. शारीरिक बल) का प्रतिपादन किया। वह बल जिसमें ओज नहीं, निष्प्राण है। ओज रहित बलशाली

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

मनुष्य का बल मृत शरीरवत् है। इसी प्रकार तेजरहित बल भी निरर्थक है। निस्तेज व्यक्ति चाहे कितना ही बलवान् हो, परन्तु उसके बल का कोई प्रभाव एवं उपयोग नहीं होता। दुर्बल व्यक्तियों में भी यदि ओज और तेज है, तो उसका प्रभाव पड़ता है।

इसी प्रकार जिस बल के साथ सहनशक्ति नहीं, वह बल भी अपूर्ण है। उस बल का क्या उपयोग ? विशालकाय बलिष्ठ व्यक्ति सहनशक्ति के अभाव में निरुपयोगी हो जाते हैं। अतः वेद ने बल को चतुष्पाद या चतुर्भुज १. ओज, २. तेज, ३. सहनशक्ति, ४. शारीरिक बल के साथ सम्पन्न करने को कहा है। इस प्रकार शक्ति सम्पन्न चतुर्भुज व्यक्तियों का समाज अपने बल-पराक्रम का समुचित उपयोग कर सकता है।

द्वितीय चतुष्पाद बल

ऐसे बलवान् समाज को पुनः—वाक्चेन्द्रियं च श्रीश्च धर्मश्च—इन चार गुणों से भी युक्त होना चाहिए। अर्थात् सत्य और प्रेममयी वाणी से युक्त होना चाहिए। यदि समाज के सब व्यक्ति ओज और तेज से युक्त बलवान् होंगे, फिर भी उनमें अप्रिय और असत्य-वाणी का व्यवहार होगा, तो परस्पर लड़ाई-झगड़े आदि होते रहेंगे और अशान्ति बढ़ेगी। अशान्ति बढ़ने से पुलिस, न्यायालय और कारागृहों की आवश्यकता होगी। दूषित समाज के, पतित आचार के परिचायक ये कोतवालियाँ, न्यायालय, वकीलों की पंक्तियाँ, सशस्त्र पुलिस का अंकुश, गुप्तचरों की टोलियाँ और कारावास हैं।

इनकी भरमार प्रकट करती है कि समाज का चरित्र, चलन आचार, व्यवहार, दिनचर्या, मन का शुभ संकल्प नष्ट हो चुका है अतः वेद ने कहा –'वाक्च'—मधुर और सत्य वाणी का स्वतन्त्रता पूर्वक प्रचलन करो। अप्रिय असत्य वाक् स्वातन्त्र्य अनर्थकारी होत है। उससे समाज की हानि होती है और समाज में दुर्गुणों क प्रभाव बढ़ता है और परिणामतः अपराधों की वृद्धि होती है।

दूसरा गुण—'इन्द्रियं च'—पंच ज्ञानेन्द्रिय, पंच कर्मेन्द्रिय औ

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

आत्मा तथा अन्तःकरण इनकी शुद्धता, पवित्रता, शान्ति, जितेन्द्रियता और धार्मिकता होनी चाहिए। इससे मानसिक विचारों एवं कायिक कर्मों की श्रेष्ठता होती है। अतः समाज का या राष्ट्र का ध्यान मानसिक विकास, जितेन्द्रियतापूर्वक, संयमपूर्वक, सभ्यता एवं सुशीलता के व्यवहार के शिक्षण, विकास एवं प्रचार का होना चाहिए।

समाज की प्रवृत्तियों के अनियन्त्रित रूप में विकास से कु-प्रवृत्तियों का साम्राज्य हो जाता है और समाज अनियन्त्रित कर्मों—पापाचारों में प्रवृत्त हो जाता है। अतः इन्द्रियों के संयम पर ध्यान देने से समाज अनेक सामाजिक दोषों से बच सकता है।

वैदिक समाजवाद मूल से ही निर्माण का आदेश देता है। अनियन्त्रित, असंयत व्यक्तियों के पीछे गुप्तचर, पुलिस, सेना, न्यायालय, कारागृह आदि के अत्यधिक खर्च समाज या राष्ट्र को भोगने पड़ते हैं और अधिकांश शक्ति एवं धन का व्यय इसी में हो जाता है। दोष ही उत्पन्न न हों, सद्विचारों और श्रेष्ठ कर्मों की प्रवृत्ति बने, ऐसा प्रयत्न प्रारम्भ से ही करना चाहिए।

तीसरा और चौथा गुण—श्रीश्च धर्मश्च—का समाज में आना चाहिए। जिस बलवान् सतेज समाज में सत्य और मधुर वाणी के प्रयोग की स्वतन्त्रता होगी और अन्तःकरणों में सद्विचार और जितेन्द्रियता, संयमपूर्वक व्यवहार होगा, उसमें लक्ष्मी, सम्पत्ति एवं ऐश्वर्य की वृद्धि के लिए अनाचार, भ्रष्टाचार आदि का आश्रय नहीं लेना पड़ेगा। अपितु लक्ष्मी की प्राप्ति, वृद्धि एवं रक्षण के लिए सार्वजनिक, सर्वहितकारी नीति का अवलम्बन करना होगा। इस प्रकार की नीति से 'श्रीश्च' का साहचर्य 'धर्मश्च' के साथ बन सकेगा।

अर्थ का सम्बन्ध धर्म के साथ होना चाहिए। धर्म से प्राप्त धन वास्तव में अर्थ है। वही श्री कहलाने योग्य है। अधर्म से, भ्रष्टाचार से पापयुक्त नीति से, छल कपट से प्राप्त धन तो अनर्थ है और अनर्थकारी भी है, अतएव श्रीरहित है। इसलिए पक्षपात रहित न्यायचरण, वेदोक्त धर्म और जो इसके साधन एवं लक्षण

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

हैं, उन्हें प्राप्त करना चाहिए।

उपरोक्त गुणों से शारीरिक और आत्मिक गुणों की वृद्धि व्यक्ति और समाज में होगी। ऐसे समाज में बल का, शरीर और मानसिक शक्तियों का, श्री और धर्म का विकास होगा। उस समाज में पुनः 'ब्रह्म च क्षत्रं च' ब्राह्म और क्षात्र शक्तियों का विकास या ब्राह्म और क्षात्र वर्णों का वर्गीकरण प्रारंभ हो जाता है।

समाज या राष्ट्र में ब्राह्म एवं क्षात्र व्यक्ति दोनों का पूर्ण उदय होना चाहिए। कुछ समस्याओं का हल ब्राह्म शक्ति से ही होता है और कुछ का हल क्षात्र शक्ति से होता है। परन्तु कुछ ऐसी भी स्थितियाँ हैं, जिनमें दोनों शक्तियों की आवश्यकता रहती है। अतः वेद कहता है—

संशितं मे ब्रह्म संशितं वीर्यं बलम्।
संशितं क्षत्रं विष्णुः···।। (यजु: अ० ११। मं० ८१)

मेरा ब्राह्म बल सुदृढ़ हो। मेरा ब्राह्म बल—वीर्य, पराक्रम युक्त हो तथा बल, पराक्रम से युक्त जयशील मेरा क्षात्र बल भी सुतीक्ष्ण हो। क्षात्र बल की महिमा को सर्व साधारण अनुभव करते हैं। परन्तु ब्राह्म बल की महिमा को भी लोग समझ कर उसे भी समुन्नत करें और उसका भी प्रयोग करें।

तृतीय चतुष्पाद बल

ये दोनों ब्राह्म एवं क्षात्र शक्तियाँ ही मिलकर—राष्ट्रं च विशश्च—राष्ट्र का निर्माण करती हैं और उस राष्ट्र या समाज का न्याय से पालन करती हैं, जिससे उत्तम प्रजा का निर्माण होता है और उसकी उन्नति होती है। इस प्रकार समाज या राष्ट्र की उन्नति या विकास से—त्विषिश्च यशश्च वर्चश्च द्रविणं च—इन चार विशिष्ट गुणों का विकास होता है।

'त्विषिः' का तात्पर्य उस तेज से है, जो सद्विद्या से प्राप्त होता है तथा शरीर व आत्मा के विकास से आध्यात्मिक बल प्राप्त होता है। यही ब्राह्म बल है। ब्राह्म तेज है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ब्राह्म शक्ति से ब्राह्म तेज की समाज में वृद्धि होती है अर्थात् अध्यात्म शक्ति की वृद्धि होती है और क्षात्र बल से भौतिक बल की वृद्धि होती है। इस प्रकार इन दोनों बलों के साथ न्यायपूर्वक प्रजा पालन करने से—यशश्च—सत्कीर्त्ति की प्राप्ति होती है। जिस प्रकार विद्या बल या धन आवश्यक है, उसी प्रकार यशरूपी बल या धन की भी आवश्यकता है।

विद्या, विनय आदि से सम्पन्न समाज की यदि सत्कीर्त्ति न हो, तो विद्या की पूर्ण उपयोगिता नहीं हो सकती। अतः ब्राह्म और क्षात्र शक्तियों को त्विषिः और यशः से सम्पन्न होना चाहिए।

वर्च का तात्पर्य है तेज। अपने समाज का या राष्ट्र का तेज रूपी बल या धन बढ़ना चाहिए। हमारी विद्या, बुद्धि तथा यश का इतना वर्चस् होना चाहिए कि दूसरा हमारे वर्चस् से ही पराभव को प्राप्त हो जाये और जो न्याययुक्त बात हम मनवाना चाहते हैं, वह उसे स्वीकार कर ले। उसे मनवाने के लिए बल का या सेना का प्रयोग न करना पड़े।

वर्च के साथ राष्ट्र में—द्रविणं च—द्रव्योपार्जन, उसकी रक्षा और उसका धर्मयुक्त परोपकारकर्म—सार्वजनिक, सर्वहितकारी कर्मों में विनियोग करना चाहिए। द्रविण का अर्थ धन, स्वर्णादि, पराक्रम, बल आदि है। धन, स्वर्णादि भी राष्ट्र, समाज एवं व्यक्तियों का बल है। अतः समाज को धन बल से भी सम्पन्न करना चाहिए।

धन की उपेक्षा नहीं की जा सकती। परन्तु धन को अत्यधिक या सर्वाधिक प्रमुखता भी नहीं देनी चाहिए। आज के समय में धन को अत्यधिक महत्त्व प्राप्त हो गया है। प्रत्येक क्षेत्र में इसका प्रभुत्व है। ब्रह्म, क्षत्र, यश, वर्च आदि के बाद धन शक्ति है। वेद धन एवं ऐश्वर्य की प्राप्ति के प्रति उपेक्षा के भाव नहीं देता, अपितु धन ऐश्वर्यादि के लिए निम्न शब्दों में प्रेरित कर रहा है :—

अग्ने नय सुपथा राये—(यजुः अ० ४० । मं० १६)

हे अग्ने! तुम्हारे साहचर्य से धन-ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है, अतः धनैश्वर्य के मार्ग पर ले चलो। अर्थात् हम उन व्यवहारों पर आरूढ़ हों, जिनसे धनादि ऐश्वर्य प्राप्त होता है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation Chennai

वयं स्याम पतयो रयीणाम्। (यजुः अ० २३। मं० ६५)

हम धनों के स्वामी हों। इसी प्रकार—

वयं भगवन्तः स्याम। (यजुः अ० ३४। मं० ३८)

हम सब ऐश्वर्यवान् होवें। इस प्रकार इन मन्त्रों में धन की कामना है—ऐश्वर्य की कामना है, परन्तु व्यक्ति रूप में नहीं, अपितु समूह रूप से—सभी के लिए धनैश्वर्य की कामना है। अस्मान् और वयं शब्द बहुवचनान्त हैं। हम सब ही धनों के स्वामी हों।

धन के हम स्वामी तो बनें, परन्तु धन हमारा स्वामी न बन जाये। आज धन हमारा स्वामी बन गया है। हम उसके दास बनकर घूम रहे हैं। सुबह से शाम तक इसी की चिन्ता में घूम रहे हैं। रात्रि को भी इसी की चिन्ता में समय व्यतीत कर रहे हैं। बाल, वृद्ध, युवा स्त्री हो या पुरुष आज धन की साधना में अपना प्रत्येक क्षण व्यतीत कर रहा है। वह अपने समय का महत्त्व रुपयों से तोल रहा है। यह स्थिति अवांछनीय है।

इस प्रकार पूर्वोक्त मन्त्रों में जिन गुणों का वर्णन है, वे समाज या राष्ट्र के उत्थान के लिए आवश्यक हैं। समाज को ऐसे सब कार्यों की उन्नति के लिए पृथक्-पृथक् सभाएँ, समितियाँ बनानी चाहिएँ और उन पर समाज का नियन्त्रण एवं संचालन होना चाहिए।

ये ही पृथक्-पृथक् समितियाँ और उनके क्रियाकलाप पृथक्-पृथक् यज्ञ के नाम से भी कहे जाते हैं। अनुशासन उसका जीवन है। सार्वजनिक हित उसका मूल केन्द्र है। इसीलिए यजुर्वेद के १८ वें अध्याय में—

बलं च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्। (अ० १८ मं० २)
वित्तं च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्। (अ० १८ मं० ११)
अन्नं च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्। (अ० १८ मं १०)

इत्यादि जीवन के लिए प्रत्येक उपयोगी कार्य को यज्ञ के द्वारा सम्पन्न करने का आदेश दिया है।

समाज में सभा एवं समितियों का निर्माण

सभाओं का कार्य यज्ञ की पवित्र भावना से, परोपकार की

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

 Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

भावना से, सार्वजनिक हित की भावना से, स्वार्थ त्याग कर करना चाहिए। किसी कार्य या योजना को बनाने के लिए जो विचारों का अनुशासित रूप में परस्पर आदान-प्रदान है, वही सभा का रूप है। वेद सभाओं एवं समितियों के निर्माण का आदेश देता है :—

सत्ताईसवाँ सूत्र-मन्त्र—(२७)

तं सभा च समितिश्च । (अथर्व कांड १५ । सू० ६ । मं० २)

संसार में धर्म के साथ समाज या राष्ट्र के पालनादि का जो कार्य किया जाता है, उस व्यवहार को सभाओं और समितियों से सम्पन्न करें। जिस-जिस कार्य को समाज या राष्ट्र में सम्पन्न करना है, उस-उसके लिए सभायें एवं समितियाँ बनानी चाहिएँ। सभाओं एवं समितियों के शासन से ही पंचायती राज्य, नगरपालिका आदि का विकास होता है।

सभा में असभ्यों को प्रवेश नहीं देना चाहिए। जिस सभा में असभ्य व्यक्ति असभ्यता का व्यवहार करें, उसके नियमों का पालन न करें, उच्छृङ्खलता करें वह सभ्यों की सभा कहलाने योग्य नहीं है। वह तो श्वानसमागम है। आज की सभाओं में सदस्यों का जो व्यवहार है, वह बहुत कम सभ्य श्रेणी का पाया जाता है। छोटी सभाओं से लेकर राष्ट्र मण्डल की उच्च सभाओं तक में न्यूनाधिक अभद्र व्यवहार देखने को मिलता है। वेद सभासदों को सभ्यता का उपदेश देता है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

वैदिक समाजवाद में पारिवारिक आदर्श

पारिवारिक जीवन का वैदिक आदर्श

व्यक्ति और समाज के पारिवारिक जीवन का महत्त्व बहुत अधिक है। व्यक्ति का परिवार ही सामाजिक जीवन की शिक्षा का प्रथम क्रियात्मक क्षेत्र है। व्यक्तियों से परिवार और परिवारों से समाज का निर्माण होता है। अतः समाज के निर्माण के लिए व्यक्ति और परिवार के निर्माण की आवश्यकता है। परिवार में किसे कैसा वर्त्तना चाहिए, इसकी मर्यादा वेद ने बताई है।

(१)

अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः।
जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शान्तिवाम् ॥

(अथर्व कां० ३। सू० ३०। मं० २)

परिवार में माता-पिता, भाई-बहिन, पुत्र-पुत्री, पति-पत्नी आदि सम्बन्ध से जीवन यापन करना होता है। प्रत्येक व्यक्ति परिवार में अनेक सम्बन्धों से युक्त होता है। वह किसी का पुत्र है, तो किसी का पिता भी है। किसी का वह भाई है, तो किसी का मामा भी है। किसी का वह पति है, तो किसी का दामाद भी है।

इस प्रकार विविध सम्बन्धों से युक्त पारिवारिक स्थिति में एक व्यक्ति को स्वजनों से विविध प्रकार का व्यवहार करना पड़ता है। पारिवारिक व्यवहार की मर्यादा का जैसा निर्धारण होगा, वैसा ही व्यवहार और उससे सुख की प्राप्ति होगी।

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पिता के साथ पुत्र का व्यवहार

(१) अनुव्रतः पितुः पुत्रः ।

पुत्र का कर्त्तव्य है कि वह अपने पिता के अनुकूल आचरण करने वाला हो। वह पिता की आज्ञा का पालन करे एवं उसके बताये मार्ग पर दृढ़तापूर्वक, श्रद्धा एवं प्रेम से, निःशंक होकर चले। क्योंकि अज्ञो भवति वै बालः पिता भवति मन्त्रदः।(मनुः) बालक अल्पज्ञान वाला, अविकसित बुद्धि वाला होता है और उसे सत्य ज्ञान देने वाला, सन्मार्ग का प्रदर्शन करने वाला पिता ही होता है। अतः पिता की बात पुत्र को माननी चाहिए। इसी प्रकार पिता का कर्त्तव्य है कि पुत्र को विचार, प्रेरणा आदि देता रहे।

माता के साथ पुत्र का व्यवहार

(२) मात्रा भवतु संमनाः ।

माता के साथ पुत्र समान मन वाला बने। वह माता के मन से प्रतिकूल कार्य करने वाला न हो। माता की इच्छा के विरुद्ध व्यवहार करने वाला न बने। माता की इच्छा ही बालक की इच्छा रहे। विरुद्ध इच्छा ही हठीले, जिद्दी स्वभाव में परिवर्तित होती है। यही जिद प्रतिकूल विचार होने से त्याज्य है। इस प्रकार बालक का विकास माता-पिता द्वारा अच्छी प्रकार हो सकता है।

पति-पत्नी का व्यवहार

(३) जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शान्तिवाम् ।

बालक के माता-पिता ही परस्पर पति-पत्नी रूप से होते हैं। अतः इन दोनों के व्यवहार के बारे में वेद ने कहा कि पत्नी पति की प्रसन्नता के लिए उसके साथ—मधुमतीं वाचं वदतु—माधुर्ययुक्त वाणी का प्रयोग करे, जिससे पति सदा प्रसन्न रहे और वह भी पत्नी के साथ—शान्तिवाम्—शान्त होकर मधुर वाणी का व्यवहार करे।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार मन्त्र में पुत्र और पिता का, पुत्र एवं माता का और पुत्र के माता-पिता का सम्बन्ध कैसा हो, इसका प्रतिपादन किया गया है। पति-पत्नी का व्यवहार कैसा हो, इस सम्बन्ध में एक अन्य मन्त्र में भी महत्त्वपूर्ण व्यवहार का उल्लेख है :—

समंजन्तु विश्वे देवाः समापो हृदयानि नौ।
सं मातरिश्वा सं धाता समुदेष्ट्री दधातु नौ॥

(ऋ० १०।८५।४७)

जल के समान मिलन की एकरूपता का व्यवहार

(१) पति-पत्नी का दाम्पत्य सम्बन्ध कैसा हो, इसका इस मन्त्र में उत्तम वर्णन है। मन्त्र पति-पत्नी दोनों से समाज के समक्ष घोषित करवाता है कि हे समाज के प्रतिष्ठित जनो! हम दोनों जो पति-पत्नी भाव से ग्रथित हुए हैं और विवाह सूत्र से आबद्ध हुए हैं, हम दोनों के हृदय एवं मन जल के समान एक हैं।

जिस प्रकार दो जलों को मिला देने पर वे एक हो जाते हैं और इतने एकरूप हो जाते हैं कि उन्हें पृथक् नहीं किया जा सकता। न उनमें पार्थक्य देखा जा सकता है। दोनों जलों का शील-स्वभाव भी एकरूप हो जाता है। उनमें दो पृथक् गुण नहीं प्रतीत हो सकते। ठंडा एवं उष्ण जल मिला देने पर दोनों का ताप पृथक्-पृथक् नहीं रहता। एक समान ताप हो जाता है। दोनों का स्तर भी समान रहेगा। उनमें ऊँच-नीच का भाव भी दृष्टिगोचर नहीं हो सकता। बादलों की ऊँचाई से आया पानी और कुएँ की गहराई से लाया गया पानी जब दोनों मिलेंगे, तब दोनों मिलकर एक समान स्तर का ही निर्माण करेंगे।

जल को—आपः शिवाः शिवतमाः शान्ताः शान्ततमाः—कहा गया है। तदनुसार पति-पत्नी का एकीभाव कल्याणमय तथा परम शान्त होना चाहिए। जल के स्वभाव के अनुकूल बनने का वेद उपदेश करता है। यह ऐक्य, शान्ति एवं कल्याण रूप दोनों के हृदय एवं मन से होते हैं अतः 'समापो हृदयानि नौ' ऐसा दोनों घोषित

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

करते हैं। दोनों के हृदय एवं मन में किसी तरह का भेद, संदेह आदि नहीं होना चाहिए। भेद एवं सन्देह रहित अभेद, एकत्व एवं एकरस स्थिति का प्रतिपादन करने के लिए पति-पत्नी की यह घोषणा एवं उस निमित्त दृष्टान्त अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इससे बढ़कर पति-पत्नी के प्रेमभाव एवं एकत्व का प्रतिपादक अन्य दृष्टान्त हो नहीं सकता।

वायु के समान एकत्व स्थिति

(२) इसी प्रकार दूसरा उदाहरण—सं मातरिश्वा— भी पति-पत्नी का देते हैं। अर्थात् जिस प्रकार दो वायु परस्पर मिल जाते हैं और एकरूप हो जाते हैं, जिस प्रकार दो प्राण एकरूप हो जाते हैं और जिस प्रकार शरीर में अनेक प्राण होते हुए भी अपने-अपने स्थान पर मुख्य प्राण के सहायक बनकर कार्य करते रहते हैं, उसी के समान हम दोनों के प्राण एकरूपता को प्राप्त हो गये हैं।

शरीरस्थ प्राणों में से किसी भी प्राण को पृथक् करने से जिस प्रकार शरीर का संगठन बिगड़ जाता है और क्लेश होता है तथा जीवन नष्ट होने लगता है, उसी प्रकार हम दोनों के प्राण एक हो गये हैं। हम दोनों के प्राणों में से किसी के शरीर या प्राण को कष्ट होने पर या प्राण की हानि होने पर दूसरे को भी सुख नहीं रहेगा। अपितु उसकी पीड़ा अपनी पीड़ा के समान अनुभूत होगी। जैसे प्राणवायु हम दोनों को प्रिय है, वैसे हम दोनों एक-दूसरे से सदा प्रसन्न रहेंगे। इस प्रकार की प्रेम की अत्यन्त दृढ़ भावना इस वाक्य से ग्रहण करने में आती है।

परमात्मा सदृश धारक स्थिति

(३) पूर्व प्रकार की प्रीति के साथ पति-पत्नी की प्रीति—सं धाता—जैसे जगत् का धारण करने वाला परमात्मा सब जगत् को अच्छी प्रकार से धारण करता है, उसी प्रकार हम दोनों एक-दूसरे को अच्छी प्रकार धारण, पोषण करेंगे। ऐसी स्थिति को पति-पत्नी

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

समभकर—स धाता—की घोषणा करते हैं।

परमात्मा सृष्टि को धारण करने के लिए वह उसके साथ ऐसा अभिन्न बन गया है कि वह पृथक् सामान्य रूप से दीखता नहीं। सामान्य लोग यही समझते हैं कि जगत् ही जगत् है। प्रकृति ही है और कुछ है ही नहीं। एक ही रूप दीखता है। इसके विपरीत जिन्होंने ब्रह्म के रूप को देख लिया, उन्होंने कह दिया कि ब्रह्म ही ब्रह्म है। प्रकृति कुछ नहीं है अर्थात् परमात्मा से पृथक् स्थिति प्रकृति या जगत् की नहीं। परमात्मा से आच्छादित वह है और उसके भीतर भी परमात्मा विद्यमान रहकर उसे हर क्षण धारण किये हैं। इस प्रकार की स्थिति पति-पत्नी की एक दूसरे को अभिन्न रूप से धारण करने की बनानी चाहिए।

उपदेशक एवं श्रोता की स्थिति

(४) पति-पत्नी के व्यवहार की प्रेममय स्थिति का और भी निरूपण करने के लिए वेद ने—समुदेष्ट्री दधातु नौ—कहा है। जैसे उपदेश करने वाला श्रोताओं के प्रति प्रीति करता है और श्रोता वक्ता के वचनों के प्रति प्रीति रखते हैं, उसी प्रकार दोनों का चित्त, मन, आत्मा का आकर्षण एक दूसरे के साथ दृढ़ प्रेम को प्राप्त होकर एक दूसरे की बात को अच्छी तरह सुनने, ग्रहण करने एवं धारण करने वाले हों। ये परस्पर एक-दूसरे के वचनों की अवहेलना करने वाले नहीं होने चाहिए।

वधू का गृह में व्यवहार—२

पति-पत्नी के इन सुखद सम्बन्धों के साथ जिस घर में पत्नी प्रवेश करती है, वहाँ उसका अपने माता-पितादि के साथ क्या व्यवहार रहे, इसके लिए वेद उपदेश कर रहा है—

स्योना भव श्वसुरेभ्यः स्योना पत्ये गृहेभ्यः।
स्योनास्यै सर्वस्यै विशे स्योना पुष्टायेषां भव॥

(अथर्व कां० १४। सू० २। मं० २७)

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

(१) हे वधू ! **स्योनाभव श्वसुरेभ्यः**—तू श्वसुरादि के लिए सुखदाता हो।

(२) **स्योना पत्ये**—तू पति के लिये सुखदायिनी हो.

(३) **गृहेभ्यः स्योना**—गृह के जो अन्य सम्बन्धी हैं, उन सबके लिए भी सुखदायिनी हो।

(४) अस्यै सर्वस्यै विशे स्योना—गृह में जो प्रजा, सन्तानादि हैं, उन सबके लिए भी समान, यथोचित, प्रेमपूर्ण सुखदायी व्यवहार करने वाली हो एवं जो राष्ट्र की या समाज की प्रजा है उनका भी हित चाहने वाली हो और

(५) पुष्टाश्वेषां भव—इन सब गृह के सम्बधियों और प्रजा के लिए पुष्टि करने वाली हो।

वधू का गृह में अधिकार—३

वधू का अपने पतिगृह में क्या अधिकार हो, इस बारे में वेद आदेश देता है :—

सम्राज्ञी श्वसुरे भव, सम्राज्ञी श्वश्र्वां भव।
ननान्दरि सम्राज्ञी भव, सम्राज्ञी अधिदेवृषु॥

(ऋ० १०।८५।४६)

(१) हे वधू ! तू **सम्राज्ञी श्वसुरे भव**—अपने श्वसुर आदि बड़ों के प्रति सम्यक् प्रकाशमान, चक्रवर्ती राजा की रानी के समान पक्ष-पात छोड़कर सबके साथ उत्तम आदरपूर्वक व्यवहार एवं गृह पर सुशासन करने वाली हो।

(२) **सम्राज्ञी श्वश्र्वां भव**—परिवार में जो सास आदि वृद्धा एवं पूजनीया स्त्रियाँ हैं, उनमें प्रीतियुक्त होके, उनकी आज्ञा में प्रीतिपूर्वक सम्यक् व्यवहार को प्रकाशित करने वाली हो।

ननान्दरि सम्राज्ञी भव—जो तेरी इस कुल में ननद आदि समान वय की स्त्रियाँ हैं, उनके साथ प्रीतियुक्त व्यवहार की प्रकाशिका हो।

(४) **साम्राज्ञी अधिदेवृषु**—जो देवर, जेठ आदि छोटे-बड़े हैं, सबमें आत्मीयता के भाव के साथ प्रीति से प्रकाशमान व अधिकारयुक्त हो

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अर्थात् वधू को इस गृह में सबसे अविरोधपूर्वक, पक्षपातरहित, यथा-सम्मान, प्रीतिपूर्वक व्यवहार करना चाहिए।

घर की सम्राज्ञी

इस मन्त्र में वधू को पति के गृह में सम्राज्ञी की उपाधि से अलंकृत किया गया है। सम्राज्ञी का अर्थ है अच्छी तरह, निष्पक्ष, जिसके साथ जैसा व्यवहार प्रदर्शित करना चाहिए, वैसा ही व्यवहार करने वाली वधू। अर्थात् वह अपने पितृ-गृह में जिस प्रकार अपने माता, पिता, भाई, बहन से वर्त्तती थी, उसी प्रकार अब वर के गृह में वर के माता, पिता, भाई, बहिन आदि के साथ तत्समान प्रेमपूर्ण व्यवहार का प्रकाश बिना पक्षपात के करनेवाली होने से सम्राज्ञी पद से विभूषित की गई है।

सम्राट् की पत्नी को सम्राज्ञी कहते हैं। यह पद बहुत प्रतिष्ठित एवं उच्च है। जो स्थिति एक साम्राज्य में सम्राज्ञी की होती है, वही स्थिति एक पारिवारिक साम्राज्य में वधू की सम्राज्ञी के रूप में वेद प्रतिपादित करता है। वेद की दृष्टि में स्त्रियों का स्थान समाज में बहुत प्रतिष्ठा का है।

वर्त्तमान स्थिति

वर्त्तमान समय में स्त्रियों को यद्यपि अनेक प्रकार से उन्नत करने के प्रयत्न हो रहे हैं, परन्तु उन सब आदर्शों के पीछे स्त्रियों को पुरुषों के समान अधिकार प्रदान करने की भावना है। यह समानाधिकार शिक्षा, सेवा, सम्पत्ति, सम्मान आदि सम्बन्धी हैं। परन्तु वेद के अनुसार उन्हें पुरुष से कुछ उच्च सम्मान की स्थिति प्रदान की गई है।

आज के समय ने स्त्री को समान अधिकार देकर उसे परिवार की सम्राज्ञी के पद से हटाकर कल-कारखानों, आफिस और कोर्टों में नौकर और मजदूर बनाकर घर के साम्राज्य से हटाकर सड़क पर भटकने वाली और अर्थ की दासी बना दिया है।

वेद में स्त्रियों की सम्मान स्थिति

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

परन्तु वेद तो मनुष्य से प्रतिज्ञा करवाता है कि—

ममेयमस्तु पोष्या। (अथर्व० का० १४। सू० १। मं० ५२)

यही मेरी पत्नी पोषण करने योग्य हो। अर्थात् पत्नी के पोषण करने का पूर्ण उत्तरदायित्व पति पर है। पति का यह कर्त्तव्य नहीं कि वह पत्नी को अर्थ-उत्पादन की साधिका बनाये। जो व्यक्ति स्त्रियों के द्वारा द्रव्योपार्जन कराता है, उससे अपना निर्वाह करता है, वेद ऐसे व्यक्तियों को दण्डनीय मानता है, जैसा कि निम्न मन्त्र में वर्णित है :—

उत्सक्थ्या अव गुदं धेहि समञ्जिं चारया वृषन्।
यः स्त्रीणां जीवभोजनः॥ (यजु० अ० २३। मं० २१)

ऐसे व्यक्ति जो स्त्रियों पर अपना जीवन निर्वाह चलाते हैं उनको टांगों के बल उल्टा टांगकर ताड़ना करनी चाहिए, जिससे सत्य और न्याय का प्रसार हो सके। अर्थात् स्त्रियों को लोभवश जो आजीविका में प्रवृत्त करते हैं, वे समाज में अनावश्यक आर्थिक स्पर्द्धा एवं आर्थिक संतुलन को बिगाड़ने वाले होते हैं और पारिवारिक जीवन की स्थिति आर्थिक दृष्टि से तो अच्छी होने लगती है, परन्तु ऐसी स्थिति समाज में फैलने पर स्त्री का मूल्यांकन उसके गृह के पुरुषार्थ पर नहीं अपितु लोक-पुरुषार्थ की योग्यता पर होने लगता है और वह पुरुष की आर्थिक प्रतिद्वन्द्विता का कारण बन जाती है। आर्थिक प्रतिद्वन्द्विता में न्यून अर्थ वाले को हीन दृष्टि से देखने की प्रवृत्ति होती है। इस प्रकार स्त्री को समानाधिकार के नाम पर पुरुष के समान अधिकारों का प्रदान अनेक स्थितियों में अनुकूल भी नहीं है।

वर्त्तमान में स्त्रियों के प्रति भाव

आज के समाज ने स्त्री को अपने मनोरंजन एवं भोग का क्षेत्र बना लिया है। वह शिक्षा-दीक्षा से उसे ऐसा बना देना चाहता है कि वह गृहिणी न रहकर बाह्य क्षेत्र की ही बन जाये। उसका मन एक केन्द्र बिन्दु से हटकर चारों ओर उन्मत्त होकर भ्रमर की तरह इतस्ततः घूमता रहे। उसे पति नहीं चाहिये, अपितु उसे आनन्द का एवं वासनापूर्त्ति का साथी चाहिए। वैदिक सभ्यता ने पाठ पढ़ाया था—

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

यत्र नार्यस्तु पूजयन्ते रमन्ते तत्र देवताः—जिस समाज, जाति या देश में नारियों को उच्च सम्मान प्राप्त होगा, वहाँ की प्रजा, हड़ताल, उपद्रव, अशान्ति उत्पन्न करने वाली न होकर "देव-प्रजा" होगी।

स्त्री का क्षेत्र गृह

आज के समाज ने पत्नी को घर से बाहर का क्षेत्र सौंप दिया है। वेद ने तो उसका क्षेत्र प्रमुख रूप से घर ही बताया है, जैसा कि निम्न वेद मन्त्र में है :—

प्र बुध्यस्व सुबुधा बुध्यमाना दीर्घायुत्वाय शतशारदाय।
गृहान्गच्छ गृहपत्नी यथासो दीर्घं त आयुः सविता कृणोतु ॥

(अथर्व० कां० १४। सूक्त २। मं० ७५)

हे पत्नी ! तू शत वर्ष पर्यन्त, दीर्घकाल जीने के लिए, उत्तम बुद्धियुक्त, सज्ञान होकर मेरे घरों को प्राप्त हो और मुझ घर के स्वामी की स्त्री जैसे तेरा दीर्घकाल पर्यन्त जीवन होवे। वैसे प्रकृष्ट ज्ञान और उत्तम व्यवहार को यथावत् जान इस अपनी आज्ञा को सब जगत् की उत्पत्ति और सम्पूर्ण ऐश्वर्य को देने हारा परमात्मा अपनी कृपा से सदा सिद्ध करे जिससे तू और मैं सदा उन्नतिशील हो कर आनन्द में रहें।

इस मन्त्र में—गृहान् गच्छ गृहपत्नी—स्त्रियों का स्थान गृह ही बताया है। उस घर में भी—**प्रबुध्यस्व सुबुधा बुध्यमाना**—उत्तम ज्ञान-विज्ञान से प्रकृष्ट ज्ञान एवं व्यवहार वाली होने के लिये बताया है जो कि—**दीर्घायुत्वाय शतशारदाय**—दीर्घ आयु एवं सौ वर्ष पर्यन्त जीने के लिए हो।

वेद के अनुसार स्त्री का क्षेत्र गृह होने पर उसे विद्या-विज्ञान से रहित रखने के लिए नहीं बताया है। अपितु उसे ऐसे ज्ञान की शिक्षा से युक्त करने को बताया है जिससे परिवार को दीर्घ जीवन एवं पूर्ण आयु प्राप्त हो।

स्त्री का कार्य-क्षेत्र घर ही है, इसे वेद ने अन्य स्थानों पर भी कहा है—

अस्मिन् गृहे गार्हपत्याय जागृहि। (ऋ० मं० १०। सू० ८५। मं० २७)

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

इस घर में गृह सम्बन्धी कार्यों के लिए हे स्त्री तू सचेत रह। इसी आधार पर विवाह समय में—इह धृतिः, इह रमस्व, मयि धृतिः, मयि रमस्व आदि स्त्री से कहा जाता है।

स्त्री-गृह जीवन की उषा

पारिवारिक जीवन के निर्माण के मूलाधार विवाह के समय जब वधू अपने पतिगृह पर आती है, तब उसकी उपमा उषा की ज्योति एवं सौन्दर्य से दी गई है—

इन्द्राणीव सुबुधा बुध्यमाना ज्योतिरग्रा उषसः प्रति जागरासि।

(अथर्व० कां० १४। सूक्त २। मन्त्र ३१)

सूर्य की कान्ति के समान तू, उषाकाल की पहली ज्योति के तुल्य प्रत्यक्ष सब कार्यों में अपनी कला की दिव्य आभा को प्रकट करने में जाग्रत् रह अर्थात् घर के प्रत्येक कार्य में उसकी कार्यकुशलता रूपी उषा की किरणें प्रकट होती रहें।

गृही जीवन में क्रीड़ा

वेद के अनुसार स्त्री के गृही जीवन में बन्धन या कारागार की भावना नहीं है। स्त्री को अपना घर इतना मंगलमय, आनन्दमय माधुर्ययुक्त एवं क्रीड़ायुक्त बनाकर रखना चाहिए कि जीवन आनन्द-मय, सुखी प्रतीत हो जैसा कि—

इहैव स्तं मा वि यौष्टं विश्वमायुर्व्यश्नुतम्।
क्रीडन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिर्मोदमानौ स्वे गृहे॥

(ऋ० मं० १०। सू० ८५। मं० ४२)

इसी गृही जीवन में तत्पर हो। इस गृही जीवन में किन्हीं विषम परिस्थितियों के कारण निराश होकर वियुक्त होने की कल्पना भी न करो। अपनी सम्पूर्ण आयु पर्यन्त सुन्दर आशा के साथ, उज्ज्वल भविष्य के निर्माण में प्रयत्नशील बने रहो। इस प्रकार पुत्र और नातियों के साथ खेल-कूद करते हुए उत्तम गृह वाले आनन्दित होकर गृहाश्रम में प्रीतिपूर्वक वास करो। निम्न मन्त्र में भी—

स्योनाद्योनेरधि बुध्यमानौ हसामुदौ महसा मोदमानौ।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सुगू सुपुत्रौ सुगृहौ तराथो जीवामुषसो विभातीः ॥

(अथर्व० कां० १४। सू० २। मं० ४३)

हे स्त्री और पुरुष! जैसे सूर्य सुन्दर प्रकाशयुक्त प्रभात बेला को प्राप्त होता है, वैसे सुख से घर के मध्य में सन्तानोत्पत्ति आदि की क्रिया को अच्छे प्रकार जानने वाले सदा हास्य और आनन्दयुक्त बड़े प्रेम से अत्यन्त प्रसन्न हुए, उत्तम चाल-चलन से धर्मयुक्त व्यवहार में अच्छी तरह चलने वाले, उत्तम पुत्र वाले, श्रेष्ठ गृहादि सामग्रीयुक्त, उत्तम प्रकार जीवों का धारण करते हुए गृहाश्रम के व्यवहार के पार होओ।

परिवार में भाई-बहिनों का व्यवहार

भाई का भाई के साथ, भाई का बहिन के साथ, बहिन का बहिन के साथ कैसा सम्बन्ध या व्यवहार परिवार में रहे, इसके बारे में वेद उपदेश करता है—

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा।
सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया॥

(अथर्व० कां० ३। सू० ३०। मं० ३)

(१) **मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्**—भाई से भाई कभी द्वेष, ईर्ष्या, घृणा, क्रोध, विपरीत भाव, विरोध नीति का आचरण करने वाला न हो, अपितु आपस में प्रेमपूर्वक भ्रातृभाव से ही बर्त्तें।

(२) **मा स्वसारमुत स्वसा**—बहिन-बहिन से कभी द्वेष, ईर्ष्या, घृणा, क्रोध, वैमनस्य, विपरीत भाव एवं विरोध नीति का आचरण करने वाली न हो, अपितु आपस में प्रेमपूर्वक ही बर्त्तने वाली हो।

इसी प्रकार भाई और बहिन का भी परस्पर द्वेष, घृणा, विरोध रहित और प्रीति से युक्त व्यवहार होना चाहिए।

(३) **सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा**—अच्छे मन एवं प्रेमादि गुणों से युक्त तथा नियम, अनुष्ठान, अनुशासन, आचार, विद्याविनयादि गुण कर्म स्वभाव बनाने के लिए उत्तम व्रतों के पालक बनना चाहिए और

(४) **वाचं वदत भद्रया**—मंगलकारक रीति से एक-दूसरे के साथ

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सुखदायक, उत्तम कर्म को सिद्ध करने वाली वाणी का परस्पर व्यवहार किया करो।

सम्पूर्ण परिवार का व्यवहार—५

सम्पूर्ण परिवार का व्यवहार भी प्रेममय हो। इस बारे में वेद उपदेश करता है—

सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः।
अन्यो अन्यमभि हर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या ॥

(अथर्व० कां० ३। सू० ३०। मं० १)

जो परिवार में सबसे बड़ा होता है, उसका आदेश पालन सबको करना चाहिए। उसकी नीति पर सबको चलना चाहिए। यह वेद की भावना है। संसार के सब परिवारों में छोटा-बड़ा काल भेद से रहता है। परन्तु इन सबमें किसको सबसे बड़ा मानें, इसके लिए विचार करने पर ज्ञात होता है कि सब परिवारों का पूजनीय परमात्मा ही है। वही सबसे बड़ा है। अतः वह—सदावृधः सखा (यजु० अ० ३६ मं० ४) अनादि काल से बड़ा हमारा सखा हमारे लिए आदेश देता है कि—

(१) सहृदयं—हे गृहस्थो! मैं ईश्वर तुमको जैसी आज्ञा देता हूं, वैसा ही प्रचलन करो, जिससे तुमको अक्षय सुख हो। अर्थात् जैसे तुम अपने लिये सुख की इच्छा करते हो और उसके लिए प्रयत्न करते हो एवं दुःख नहीं चाहते हो तथा दुःख दूर करने के प्रयत्न करते हो, उसी प्रकार से समान हृदय, प्रेम-भावना तुम्हारी अपने माता, पिता, सन्तान, स्त्री, पुरुष, भृत्य, मित्र और पड़ोसी के प्रति हो और उनके दुःखों को अपना दुःख समान हृदय का बनकर ही मान सकोगे। यदि तुम्हारे माता-पिता, सन्तान, मित्र, पड़ोसी दुःखित हैं और तुम्हारी उनके दुःख के प्रति सहृदयता नहीं है, अपितु विपरीत भाव है, तो तुम उनके दुःख दूर करने के लिए उनकी सेवा नहीं कर सकोगे। इसलिए तुम्हें आपस में समान हृदय वाला बनना चाहिए। यह परमात्मा की आज्ञा है। इसके पालन करने में ही कल्याण है और इसके विपरीत आचरण में अपराध है, ऐसा अनुभव करना चाहिए।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

(२) सांमनस्यम्—परमात्मा की दूसरी आज्ञा यह है कि संसार में रहकर तुम एक मन के बनो। इससे परमात्मा प्रसन्न होगा। परमात्मा की आज्ञा के पालन से उस परमात्मा का मन भी हमारे साथ होगा या हमारा मन उस महान् परमात्मा के साथ होगा। जब हमारे मन एक-दूसरे से पृथक् होते हैं, तो वैर, विरोध होता है। उससे दुःख, क्लेश, क्रोध, मानसिक, वाचिक, शारीरिक उद्वेग होते हैं—कलह होता है। भय का प्रसार होता है। शंका के पर्वत खड़े हो जाते हैं। भयानक शंका के पर्वत और द्वेष घृणा के समुद्र पार करने के लिए एक ही मार्ग है कि हम सबके मन एक हों। हम ऐसा व्यवहार करना सीखें कि दूसरों के मन, रुचि तथा विचारों का भी ध्यान रखें।

(३) अविद्वेषं कृणोमि वः—तीसरा आदेश परमात्मा मनुष्यों को देता है कि सहृदय एवं समान मन वाली स्थिति से ही तुम वास्तव में द्वेषरहित हो सकोगे। अन्यथा बाहर दिखाने को शान्ति का रूप और भीतर द्वेष यह स्थिति अवाँछनीय है। आज के कूटनीतिज्ञ बाहर से मित्रता दिखाते हैं और भीतर उनके मन एक-दूसरे के प्रति द्वेष से धधकते रहते हैं। किन्तु वेद हृदय एवं मन से इस बात को ग्रहण करने का आदेश देता है और वह सबके लिए यही मार्ग बताता है। जब परमात्मा ने हमें परस्पर मिलकर रहनें के लिए बनाया है तो वैर-विरोध की भावना आपस में करना समाज के हित के स्वभावतः प्रतिकूल ही है।

(४) अन्यो अन्यमभि हर्यत—सब आपस में एक-दूसरे से प्रेम का व्यवहार करने वाले हों।

(५) वत्सं जातमिवाघ्न्या—जैसे हनन न करनें योग्य गाय आदि पशु अपने उत्पन्न हुए बछड़े पर वात्सल्य भाव से बर्त्तती हैं। गौ आदि पशुओं का अपनें बछड़े पर वात्सल्य निश्छल, निष्कपट, निःस्वार्थ, अत्यन्त उपकार पूर्ण परन्तु कर्त्तव्य भावना से बद्ध होकर वात्सल्यपूर्ण व्यवहार होना चाहिए। इसमें किसी प्रकार के विरोध भाव की गन्ध भी नहीं आती। यह बहुत ही उच्च भावना है।

वास्तव में यह देवत्व की भावना है। कर्त्तव्य बुद्धि से दूसरे का

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

मातृवात्सल्य से पालन-पोषण, उसके लिए अपना सर्वस्व त्याग मनुष्यों में देवत्व को जाग्रत् करता है। **मातृदेवो भव, पितृदेवो भव** आदि प्रयोग में माता में देवत्व की भावना इसीलिए उल्लिखित है कि निःस्वार्थ भाव से पुत्र के लिए अपना सर्वस्व निछावर करती है, उसके लिए महान् त्याग करती है। देवत्व की भावना में द्वेष कहीं रह ही नहीं सकता। यदि देवत्व में द्वेष का प्रवेश हो, तो देवत्व नष्ट हो जाता है। इसलिए वेद ने देवत्व की भावना को परिवार में जाग्रत् करने के लिए कहा—

परिवार में देवत्व का रूप—६

येन देवा न वियन्ति नो च विद्विषते मिथः।
तत्कृण्मो ब्रह्म वो गृहे सं ज्ञानं पुरुषेभ्यः॥

(अथर्व० कां० ३। सूक्त ३। मं० ४)

हे गृहस्थो! मैं ईश्वर जिस प्रकार के व्यवहार से विद्वान् लोग परस्पर पृथक् भाव वाले नहीं होते और परस्पर द्वेष भी कभी नहीं करते, वही कर्म तुम्हारे घर में निश्चित करता हूँ। परिवार के जनों को अच्छी प्रकार चेताता हूँ कि तुम लोग परस्पर प्रीति से बर्त्तकर बड़े धनैश्वर्य को प्राप्त होओ।

इस प्रकार परिवार में देवत्व भाव की वृद्धि होने से परिवारों में स्वर्गीय सुख होगा। परिवारों में जब स्वर्गीय सुख होगा, तब समाज और राष्ट्र में भी स्वर्गीय सुख और देवत्व क्यों न होगा। इसी भावना को निम्न वेद मन्त्र में भी बताया है—

ज्यायस्वन्तश्चित्तिनो मा वियौष्ट संराधयन्तः सधुराश्चरन्तः।
अन्यो अन्यस्मै वल्गु वदन्त एत सध्रीचीनान्वः संमनसस्कृणोमि॥

(अथर्व० कां० ३। सूक्त। ३१। मं० ५)

हे गृहस्थादि मनुष्यो! तुम उत्तम विद्यादि गुणयुक्त, विद्वान्, धुरन्धर विद्वान् होकर विचरते और परस्पर मिल के धन-धान्य, राज्य समृद्धि को प्राप्त होते हुए विरोधी वा पृथक्-पृथक् भाव मत करो। एक-दूसरे के लिए सत्य और मधुर भाषण करते हुए एक-दूसरे को प्राप्त होओ। इसीलिए समान लाभालाभ से एक-दूसरे के सहायक, एक मत वाले तुमको करता हूँ।

इस मन्त्र के अनेक शब्द अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं—

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

संराधयन्तः—मिलकर कार्य को सिद्धकरना।

सध्रीचीनान्—समान लाभालाभ से एक-दूसरे के सहायक।

संमनसः—एक मन अर्थात् एक मत वाले।

अर्थात् परिवार में रहते हुए एक मत वाले, एक मन वाले, मिलकर कार्य को सिद्ध करने वाले और लाभालाभ में एक-दूसरे के सहायक होने चाहिए। इनके लिए क्या व्यवहार हो।

ज्यायस्वन्तः, चित्तिनः सुधुराः चरन्तः—विद्वान्, सज्ञान होकर क्रियाशील बनना।

मा वियौष्ट—परस्पर पृथक् भाव वा विरोधी न होना।

वल्गु वदन्तः—सत्य मधुर भाषण परस्पर करना।

वेद के मन्त्रों में समाज एवं परिवार के निर्माण का उच्च आदर्श प्राप्त होता है। आज का मनुष्य अपनी सामाजिक एवं पारिवारिक आदर्श विचारधारा के निर्माण में इनमें से कुछ अंश ही ग्रहण कर पाया है और उसके पूर्ण स्वरूप को प्राप्त नहीं कर सका है। उसे वेद से बहुत कुछ सीखना और ग्रहण करना पड़ेगा।

आज के मानव ने अपने मस्तिष्क में एक विचित्र कल्पना कर ली है कि वह पहले निरा मूर्ख था। इसलिए वह समझता है कि जो कुछ हम अब सोच रहे हैं या सोचेंगे, वही सर्वाधिक उन्नत अवस्था है। इसलिए वह वेद को उसी विकृत विचार से देखता हुआ उसकी ओर देखने का भी प्रयत्न नहीं करता।

परिवार में प्रातः सायं सब मिला करें—७

वेद पूर्वोक्त व्यवहारों को और भी स्पष्ट करने के लिए उपदेश देता है—

सध्रीचीनान्वः संमनसस्कृणोम्येक श्नुष्टीन्त्संवननेन सर्वान्।
देवा इवामृतं रक्षमाणाः सायं प्रातः सौमनसो वो अस्तु॥

(अथर्व० कां० ३। सू० ३१। मं० ७)

सध्रीचीनान्वः संमनसस्कृणोमि—लाभालाभ में एक-दूसरे के सहायक, एक विचार वाले, परस्पर हितैषी मन वाले तुमको करता हूँ। शासन को चाहिए कि एक परिवार वाले परस्पर झगड़ने वाले, एक-दूसरे के

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

भाग को हड़पने वाले, एक-दूसरे का अनिष्ट चिंतन करने वाले न हों। एक-दूसरे की उन्नति व लाभ को हृदय से चाहने वाले और उसके लिए प्रयत्न करने वाले हों।

(२) **एकश्नुष्टीन् संवननेन सर्वान्**—एक ही धर्म कृत्य में शीघ्र प्रवृत्त होने वाले सबको धर्म-कृत्य के सेवन के साथ एक-दूसरे के उपकार में नियुक्त करता हूँ। एक परिवार में धर्म, व्रत अनुष्ठान आदि कर्म यदि भिन्न-भिन्न होंगे तो परस्पर विरोध होगा। एक धर्म, एक भाषा एवं एक लक्ष्य हुए बिना ऐक्य स्थिर नहीं रह सकता। अपने आग्रहों को छोड़ने से ही परस्पर एकता में वृद्धि होती है। आज की राजनीति विभिन्न सम्प्रदायों की रक्षा करते हुए राष्ट्र में एकता और प्रेम का दर्शन करना चाहती है। यह संभव नहीं है। विभिन्न विचारधाराएँ ही मानव-समाज को विभाजित कर रही हैं और परस्पर लड़ा रही हैं। चाहे वे विचारधारायें साम्प्रदायिक हों या राजनैतिक। इस २०वीं सदी के प्रथम एवं द्वितीय विश्व-युद्ध विशुद्ध राजनैतिक ही थे, जिनमें मनुष्य ने मानवता को तिलांजलि दे दी थी। अतः एक धर्म होना आवश्यक है।

(३) **देवा इवामृतं रक्षमाणाः**—देवों के समान अमृत की रक्षा करने वाले बनना चाहिए। अमृत क्या है? व्यावहारिक एवं पारमार्थिक सुख जिससे प्राप्त हो, वह अमृत है। विचार और कर्म दोनों अमृत की परिधि में आ जाते हैं, परन्तु वे ही इस परिधि में आ सकेंगे, जो सबको समान सुख देने वाले हों। जो स्वार्थ, सीमा, क्षुद्रता की परिधि में हैं, वे अमृत नहीं हैं। वे हम में तथा दूसरे में वैर, विरोध, ईर्ष्या, घृणा, अहंकार आदि उत्पन्न करने वाले होते हैं। इसलिए परिवार में देव भावना से व्यवहार करना चाहिए।

(४) **सायं प्रातः सौमनसो वो अस्तु**—इन उपरोक्त भावनाओं के साथ प्रातः सायं परिवार के सब व्यक्तियों के एक-दूसरे से प्रेमपूर्वक व्यवहार से और प्रेमपूर्वक मिलने से तुम्हारा मन का आनन्दयुक्त शुद्ध स्वभाव सदा बना रहेगा। इस प्रकार वेद ने परिवार को आनन्दित बनाने के मार्ग का निर्देश किया है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वैदिक समाजवाद में गृहस्थ निर्माण का आदर्शवाद

राष्ट्र या समाज के लिए गृहस्थ की आवश्यकता

व्यक्ति का एकांगी जीवन गृहस्थ जीवन नहीं है। व्यक्ति का सामूहिक जीवन भी गृहस्थ जीवन नहीं है। व्यक्ति का एक परिवार के साथ जीवन यापन करना भी गृहस्थ जीवन नहीं है। गार्हस्थ्य जीवन के बिना न परिवार बन सकते हैं और न समाज तथा राष्ट्र ही। अतः समाज एवं राष्ट्र के लिए गृहस्थ जीवन की नितान्त आवश्यकता है।

गृहस्थ जीवन के लिए ध्येय की आवश्यकता

आदर्शरहित गृहस्थ जीवन से आदर्शरहित परिवारों का निर्माण होता है और उससे समाज एवं राष्ट्र भी आदर्शहीन ही होते हैं। इसलिये हम अपने समाज या राष्ट्र का ध्येय निश्चित करें और उस ध्येय के अनुकूल गृहस्थ जीवन की स्थापना करें।

जीवन की क्रियाओं में अपने ध्येय के अनुकूल विचारों को यदि हम पुट देते चले जायें, तो उन विचारों से जीवन की क्रिया प्रभावित होती है। विचार और क्रिया की एकरूपता से जीवन पर एक संस्कार पड़ता है। ये संस्कार इस मानव देह में बीज रूप से रहते हैं। समय-समय पर ये अंकुरित होते, पल्लवित होते, पुष्पित होते और फलित होते हैं।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

विवाह भी संस्कार है

गृहस्थ जीवन के निर्माण के लिए स्त्री और पुरुष को एक इकाई में बंधना पड़ता है। जिन नियम एवं बन्धनों से ये दोनों एक रूप में ग्रथित होते हैं, उसे वेद में विवाह नाम से सम्बोधित किया गया है। विवाह बंधन में परिणित पुरुष एवं स्त्री ही वास्तव में राष्ट्र के मूल आधार स्तम्भ हैं। यह आधार स्तम्भ जितना ही दृढ़ एवं आदर्शपूर्ण होगा, समाज या राष्ट्र उतना ही उन्नत होता जायेगा। अतः वैदिक परम्परा में विवाह संस्कार का अत्यन्त महत्त्व है और इस संस्कार में महान् आदर्श को स्थापित करने का प्रयत्न किया गया है।

गृहस्थ जीवन का निर्माण

समाज का निर्माण परिवारों से होता है। परिवारों का निर्माण व्यक्ति से होता है। एक व्यक्ति या एक ही प्रकार के व्यक्ति परिवार का निर्माण नहीं कर सकते। वास्तव में परिवार के निर्माण की मूल इकाई स्त्री और पुरुष का युग्म (जोड़ा) ही है।

संसार में जो भी निर्माण है, वह दो शक्तियों का युग्म ही है। सृष्टि की मूल इकाई परमाणु में भी इलैक्ट्रोन और प्रोटोन ये दो शक्तियाँ वैज्ञानिकों को प्रतीत हुईं। ये ही 'ऋत' और 'सत्य' रूप से हैं। सत्य प्रोटोन रूप से केन्द्र में स्थित है। 'ऋत' गतिशील होने से इलैक्ट्रोन है। इसीलिए वेद में समस्त सृष्टि की उत्पत्ति में 'ऋत' और 'सत्य' को मूलभूत शक्ति बताया—

ऋतं च सत्यं चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत ।

(ऋ० मं० १० । सू० १९० । मं० १)

सृष्ट्युत्पत्ति का प्रारंभ बताते हुए वेद ने इन्हीं 'ऋत' और 'सत्य' रूपी दो आद्य शक्तियों को एक से ही उत्पन्न बताया।

सृष्टि की रचना में युग्म स्थिति

सृष्टि के निर्माण में युग्म की स्थिति है। यह युग्म मिलकर ही

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

आगे का कार्य-संचालक बनता है। अतः यह युग्म स्थिति जड़ से चेतन तक, छोटे से बड़े तक अनेक रूपों में विद्यमान है। द्यावा और पृथिवी, सूर्य और चन्द्र, रयि और प्राण, उत्तर एवं दक्षिण, अग्नि और इन्द्र, ऋण एवं धन, मित्र और वरुण, प्राण और उदान, दिन और रात, शुक्ल एवं कृष्ण पक्ष, उत्तरायण एवं दक्षिणायन, जन्म और मृत्यु, सुख एवं दुःख, हानि और लाभ, ब्रह्म और क्षत्र, ऋक् और साम आदि अनेक रूपों में यह युग्म दृष्टिगोचर होता है।

युग्म स्थिति से राष्ट्र का भरण-पोषण

इन शक्तियों का सर्वांग सुन्दर पूर्ण एवं अन्तिम रूप स्त्री और पुरुष में विकसित होता है। वेद ने स्त्री को—**सूर्याम्**(ऋ० मं० १०। सूक्त ८५। मं० ६) सूर्य की किरणवत् सौंदर्ययुक्त इस उपमा से और पुरुष को '**सोम**'—सुकुमार, शुभगुणयुक्त बताया है। सूर्य और चन्द्र से विश्व का कार्य चल रहा है इसी प्रकार इन दोनों स्त्री-पुरुष शक्तियों से सृष्टि की उत्पत्ति का क्रम चल रहा है। अतः यह शक्ति, यह युग्म—स्त्री पुरुष के ऐक्यभाव का राष्ट्रभृत्-राष्ट्र को भरण, पोषण करने का कार्य है।

सृष्टि के तत्त्वों में पति-पत्नी भाव

अखिल ब्रह्माण्ड एक राष्ट्र है। इस राष्ट्र की विविध शक्तियाँ अग्नि, सूर्य, चन्द्र, वायु, यज्ञ, मन, इनके माध्यम से इनके साथ इनके सहयोगी द्रव्यों को प्रदान कर सृष्टि में निर्माण क्रिया, वृद्धि एवं समृद्धि करती हैं। अतः ब्रह्माण्ड रूपी राष्ट्र के यज्ञ में ये यजमान हैं। जिन सहयोगी द्रव्यों के साथ ये क्रियाशील होकर निर्माण करती हैं, उनका परस्पर घनिष्ठ ऐक्य का सम्बन्ध है, अतः वे सहायक द्रव्य यजमान पत्नीरूपेण इस यज्ञ में हैं।

राष्ट्रभृत् होम—१

वेद में इन जड़ यजमान एवं यजमान पत्नियों को गन्धर्व एवं

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

 Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अप्सरा संज्ञा दी गई है। अर्थात् ब्रह्माण्ड यज्ञ में गन्धर्व और अप्सरा पुरुष एवं स्त्री की ही रूपान्तर शक्तियाँ हैं। उनसे ही राष्ट्रभृत् होम का प्रारंभ होता है।

ऋताषाड् ऋत धामाग्निर्गन्धर्वस्तस्योषधयोऽप्सरसो मुदो नाम।
स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाद ताभ्यः स्वाहा॥ १॥
संहितो विश्व सामा सूर्योगन्धर्वस्तस्य मरीचयोप्सरस आयुवोनाम।
स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहा॥ २॥
सुषुम्णः सूर्यरश्मिश्चन्द्रमा गन्धर्वस्तस्य नक्षत्राण्यप्सरसोमेकुरयोनाम।
स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहा॥ ३॥
इषिरो विश्वव्यचा वातो गन्धर्वस्तस्यापो अप्सरस ऊर्जो नाम।
स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहा॥ ४॥
भुज्युः सुपर्णो यज्ञो गन्धर्वस्तस्य दक्षिणा अप्सरसस्तावानाम।
स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहा॥ ५॥
प्रजापतिर्विश्वकर्मामनोगन्धर्वस्तस्य ऋक्सामान्यप्सरस एष्ट्योनाम।
स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहा॥ ६॥
(यजुर्वेद अ० १८। मं० ३८-४३)

प्रथम गन्धर्व एवं उसकी अप्सरा

राष्ट्र का भरण-पोषण करने में सर्वाधिक प्रबल एवं व्याप्त शक्ति अग्नि की है। विश्व का जीवन एवं कार्य अग्नि से ही चल रहा है। परन्तु अग्नि को अपना वर्च, तेज, प्रकाश, दीप्ति एवं गति दिखाने के लिए और उत्पत्ति दिखाने के लिए आश्रय भूत तत्त्व भी चाहिए जिससे वह अपने रूप में प्रकट हो सके। बिना आश्रय के वह प्रकट नहीं होती। उसका आश्रय या आधार तत्त्व या पूरक तत्त्व जब उसे मिल जाता है तो वे दोनों एकरूप हो जाते हैं और अपनी क्रीड़ा करते हैं। उससे उष्णता, प्रकाश, गति, ध्वनि आदि की उत्पत्ति होती है। अग्नि को अपने ईंधन की आवश्यकता पड़ती है। उससे वह सामर्थ्ययुक्त होती है। बिना ईंधन के अग्नि की स्वतन्त्र स्थिति प्रकट नहीं होता। वेद ने अग्नि की इस ईंधन रूपी सहचारिणी शक्ति को ओषधि कहा। दाहक गुण होने से ओषधि संज्ञा है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

जिन ओषधियों का हम सेवन रोग नाश करने के लिए करते हैं, उनका भी नाम इसीलिए ओषधि है क्योंकि वे रोग को जलाती हैं। उसे नष्ट करती हैं। उनमें रोग दाहक गुण विद्यमान है। यदि दाहक गुण उसमें विद्यमान न हो तो वह नहीं जले। अग्नि को प्रज्वलित करने के लिए, उसकी शक्ति को बढ़ाने के लिए और उससे विविध प्रकार के गुणों को प्राप्त करने के लिए जब तक अग्नि के साथ उसका संयोग रहेगा उसके द्वारा गति, क्रियाशीलता आदि होती रहेगी। इस प्रकार अग्नि रूपी गन्धर्व की ओषधि अप्सरा है। अग्नि अपने अस्तित्व को जिस शक्ति, तत्त्व या माध्यम से प्रकट करती है, वही उसकी अप्सरा है।

दूसरा गन्धर्व एवं अप्सरा का युग्म

दूसरा गन्धव इस महान् विश्वरूपी राष्ट्र में सूर्य है। उसकी किरणें ही उसकी अप्सरा हैं। उन किरणों में पदार्थों के मिलाने एवं विभाजित करने का गुण है। यदि सूर्य बिना रश्मियों का हो जाये, तो विश्वरूपी राष्ट्र में उसकी उपयोगिता नष्ट हो जाये। सूर्य की किरणों में सृष्टि के तत्त्वों को मिलाने का भी गुण है। वेद ने कहा—

स्वाहा सूर्यस्य रश्मये दृष्टि वनये।

(यजुः० अ० ३८। मं० ६)

सूर्य की रश्मियों के लिए जो दृष्टि के दोनों तत्त्वों—मित्र और वरुण को मिलाने की सामर्थ्य रखती हैं, उनके लिए क्रिया करनी चाहिए। इस प्रकार सूर्य की रश्मियाँ अनेक तत्त्वों का मिश्रण भी करती हैं और अपनी उष्णता से वृक्ष वनस्पतियों के रसों को हरण भी करती हैं। यदि विश्व के राष्ट्र में से सूर्य और उसकी किरणों की क्रीड़ा न हो तो सृष्टि का कार्य कठिन हो जाये।

तीसरा गन्धर्व और उसकी अप्सरा

तीसरा गन्धर्व चन्द्रमा है। चन्द्रमा की अप्सरा नक्षत्र है। चन्द्रमा

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

नक्षत्रों बिना नहीं रहता। चन्द्रमा अपने शीतल गुण, सोम भाग एवं अमृत तत्त्व से इस सृष्टि में वृक्ष, वनस्पति एवं अन्नादि को बलवान् बना रहा है। इसलिए वेद ने कहा है—

सोम ओषधीनामधिपतिः।

सोम से वृक्ष बनस्पतियों को अनेक प्रकार के जीवनीय तत्त्व प्राप्त होते हैं। जिस प्रकार से एक ही सूर्य की किरणें विविध रंग के काच से विविध रंगों की प्रतीत होती हैं, उसी प्रकार सूर्य एवं चन्द्रमा को शक्तियाँ, उनकी किरणें विविध पदार्थों में प्रवेश करके विविध प्रकार के गुणों को अपने में धारण करती हैं।

चतुर्थ गन्धर्व एवं उसकी अप्सरा

चौथा गन्धर्व विश्वरूपी राष्ट्र में वायु है। वायु की अप्सरा जल है। वायु के साथ पृथिवी से जल अन्तरिक्ष में गमन करता है और मेघ रूप से ऊपर पहुँच जाता है। यदि वायु इसे धारण न करे, तो जल पृथिवी पर ही रहे और ऊपर न जा सके। इन दोनों के कारण विश्व का वृष्टि एवं प्राण के द्वारा पालन हो रहा है।

पाँचवां गन्धर्व और उसकी अप्सरा

पाँचवां गन्धर्व यज्ञ है। उसकी अप्सरा दक्षिणा है। बिना दक्षिणा के यज्ञ सफल नहीं होता। अतः यज्ञ के साथ दक्षिणा का सम्बन्ध रहता है। विश्वरूपी राष्ट्र में परिश्रम का फल यदि प्राप्त न हो, तो कौन परिश्रम करे। अतः कार्य एवं परिणाम दोनों का साहचर्य सृष्टि में है। इसके न होने से भी मानव का कार्य नहीं चल सकता।

छठा गन्धर्व और उसकी अप्सरा

छठा गन्धर्व मन है और ज्ञान, कर्म, उपासना एवं विज्ञान रूपी वेद उसकी अप्सराएं हैं। मन इनके द्वारा ही संसार के कार्य क्षेत्र में

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

विविध प्रकार की रचना करता है। चिंतन शून्य मन जड़ स्थिति में होने से व्यर्थ है। अतः संसार को ये छः गन्धर्व और उनकी अप्सराएं धारण कर रही हैं। और कार्य चला रही हैं। अर्थात् राष्ट्र का धारण, पोषण, उसकी गति, उसका जीवन और उसमें रचना का कार्य दो-दो शक्तियों के परस्पर सहयोग से हो रहा है इसी प्रकार मानव-समाज के कार्य में जीवन, उन्नति, उत्पत्ति आदि में भी दो-दो शक्तियों का एक-एक जोड़ा (संघात) ही कार्य कर रहा है। इन्हें स्त्री+पुरुष कहते हैं।

स्त्री और पुरुष का पति-पत्नी भाव से समन्वयात्मक सम्बन्ध मानव राष्ट्र की सबसे छोटी इकाई है। इसीलिए जब विवाह होता है, तो उसमें राष्ट्रभृत् होम किया जाता है। अर्थात् यह विवाह कार्य राष्ट्र के भरण, पोषण और उन्नति के लिए है, यह भावना पति-पत्नी में सर्वप्रथम जाग्रत् होनी चाहिए। जिस राष्ट्र में वे रहते हैं, उसके छोटे से छोटे और बड़े से बड़े क्षेत्र के भरण, पोषण, पालन और संवर्धन की भावना पति-पत्नी के सम्बन्ध में प्रथम उद्देश्य होना चाहिए। अर्थात् यह दाम्पत्य सम्बन्ध स्वार्थ के लिए नहीं है, अपितु सबके हित के संवर्धन के लिए है तथा हम दोनों का जीवन राष्ट्र की सेवा के लिए अर्पित है, इस भावना के साथ है।

आज के दाम्पत्य सम्बन्ध में राष्ट्र के भरण-पोषण की भावना है ही नहीं। आज तो काम-वासना तृप्ति के उद्देश्य से विवाहों की उपयोगिता प्रतिपादित की जाती है। परन्तु वेद विवाह-बन्धन में प्रथम बन्धन राष्ट्र के भरण का डालता है।

(२) जया होम

दूसरा यज्ञ विवाह में जया होम होता है। जया का तात्पर्य जय से है। जयशीलता, जय की भावना गृहस्थ जीवन में होनी चाहिए निराशा की भावना कभी नहीं होनी चाहिए। मन, बुद्धि चित्त इनको पूर्ण बलवान बनाना चाहिए और ज्ञान-विज्ञान से भी बलवान बनना चाहिए। अमावस्या से पूर्णिमा तक का चक्र का दर्शन भी

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

इस यज्ञ में दम्पति को उपदेश देता है कि इस सांसारिक जीवन में घोर अन्धकारमयी रात्रि सदा नहीं रहती। अतः निराश होने की आवश्यकता नहीं। पुरुषार्थ करो, साहस रखो, धैर्य धरो, अन्धकार के बाद चन्द्र का आह्लाददायक प्रकाश भी होगा। सुख और दुःख जीवन से बँधे हुए हैं और उसमें दुःखों को दूर करने तथा सुखों की प्राप्ति के लिए विजय की भावना से आगे बढ़ते रहना और अपने राष्ट्र की सर्वांगीण उन्नति विजय की भावना से करनी चाहिए। जब तक विजय की भावना रहेगी, आप में उत्साह रहेगा, श्रम एवं तप की भावना रहेगी। जिस भी क्षेत्र में कार्य करो, सोच कर करो कि मैं इसमें विजयी होऊँ। सर्वाग्रणी बनूं। इस प्रकार से ब्राह्मण विद्या में, क्षत्रिय शासन संचालन एवं राष्ट्र रक्षा में, वैश्य व्यापार में और शूद्र कठोर श्रम में अपने को योग्यतम सिद्ध करते हुए राष्ट्र की उन्नति करें। वेद विवाह के समय राष्ट्र की या समाज की मूल इकाई दम्पति में राष्ट्र की विजय की भावना भरता है। क्या गृहस्थ के लिए ऐसा आदर्श वेद के अतिरिक्त अन्य किसी भी ग्रन्थ से प्राप्त होता है। इससे प्रतीत होता है कि वेद दाम्पत्य जीवन को समाज या राष्ट्र का आधार मानता है और तदनुकूल बनने का उपदेश देता है।

(३) अभ्यातन होम

विवाह में तीसरा यज्ञ अभ्यातन होम होता है। अभ्यातन का अर्थ है सतत उन्नति। गृहस्थ जीवन में निरन्तर उन्नति की भावना होनी चाहिए। जिसके अन्दर एक बार उन्नति करने के बाद पुनः उन्नति की इच्छा एवं प्रयत्न नहीं होगा, वह जीवन संघर्ष में पिछड़ जायेगा। अतः राष्ट्र के प्रत्येक गृहस्थ को निरन्तर उन्नति की भावना अपने अन्दर स्थापित करके प्रयत्न करना चाहिए।

इस होम में विश्व राष्ट्र की विविध शक्तियों का अपना-अपना साम्राज्ञ क्षेत्र बताते हुए, उनका उनपर निरन्तर आधिपत्य बताया गया है। अग्नि तत्त्वों एवं प्राणियों का अधिपति है। यदि अग्नि

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अपनी निरन्तर स्थिति एवं अपनी शक्ति को न बनाये रखे, तो अग्नि का आधिपत्य भौतिक तत्त्वों एवं प्राणियों पर नहीं रह सकता। सृष्टि में अग्नि तत्त्व निरन्तर क्रियाशील रहता है।

इसी प्रकार इन्द्र अर्थात् विद्युत् शक्ति इस सृष्टि में प्रवाहित हो रही है। विद्युत् की लहरें इस विश्व में व्याप्त होकर निरन्तर गति कर रही हैं। इसी प्रकार इस होम में वायु, सूर्य, चन्द्र, वाणी, जल, अन्न, सोम, सविता आदि शक्तियों का अपने-अपने क्षेत्र में निरन्तर क्रियाशील बने रह कर सृष्टि क्रम का निरन्तर प्रवाह बनाया है, जिससे संसार की स्थिति बनी हुई है। विवाह के अवसर पर विश्व के नियमों का दर्शन दम्पति को कराते हुए बताया जाता है कि आपको भी अपना जीवन राष्ट्र के हित में इसी प्रकार नियमबद्ध व्यतीत करना है। नियम ही जीवन हैं। उससे उन्नति होती है। अनियमितता ही मृत्यु है। अतः उठो, साहस के साथ, उत्साह और आशा के साथ, उन्नति और जय की भावना के साथ—प्रतरता सखायः (यजुः अ० ३५। मं० १०) इस संसार रूपी नदी को पार करो।

(४) अरिष्ट नाशन यज्ञ

वेद मन्त्र इस प्रकार गृहस्थ जीवन के लिए राष्ट्रीय जीवन निर्माण करने की प्रेरणा देते हैं। अर्थात् स्त्री और पुरुष दोनों ही राष्ट्रहित की भावना, राष्ट्र के विजय की भावना एवं राष्ट्र की सतत उन्नति की कामना वाले बनें। तत्पश्चात् विवाह का चतुर्थ यज्ञ अरिष्ट नाशक करें। अरिष्ट नाशक यज्ञ वह है कि जिन कारणों से अपने राष्ट्र को इकाइयों का वंशानुगत प्रवाह चलना बन्द हो जाता है, उन विपरीत कारणों का उच्छेदन करना।

जिस गृहस्थ की प्रजा या सन्तति अकाल में ही मृत्यु ग्रसित हो जाती है, उस वंश का अभ्यातन होम नष्ट हो जाता है—असफल हो जाता है। अतः विश्व की वे शक्तियाँ जो जीवन देने वाली, रक्षा करने वाली एवं पालन करने वाली हैं, वे स्त्री के अन्दर ऐसी शक्ति

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

प्रदान करें कि इसकी प्रजा दीर्घायु वाली हो। इस प्रकार यज्ञ के द्वारा अपघातिनी शक्तियों को दूर करने की प्रेरणा प्राप्त होती है।

(५) व्याहृति होम

इतनी प्रक्रिया विवाह के लिए होने के पश्चात् वर-वधू पाँचवां व्याहृति होम करते हैं। व्याहृति होम के द्वारा—

भूरग्नये स्वाहा। इदमग्नये इदन्नमम॥
भुवर्वायवेस्वाहा। इदं वायवे इदन्नमम॥
स्वरादित्याय स्वाहा। इदमादित्याय इदन्नमम॥
भू र्भुवः स्वरग्नि वाय्वादित्येभ्यः स्वाहा। इदमग्निवाय्वादित्येभ्य इदन्नमम॥

इन मन्त्रों का उच्चारण करते हुए पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्यौ के अधिपति अग्नि, वायु और आदित्य के लिए आहुति देते हैं तथा अखिल विश्व के कल्याण के लिए अपने मन, वचन एवं कर्म को संगत करते हैं। क्योंकि विश्व की शक्तियों से इस मानव देह की रचना हुई है, अतः इस देह द्वारा अखिल विश्व का भरण-पोषण होना ही चाहिए अर्थात् संसार के उपकार में अपने जीवन को अर्पित करना चाहिए।

अकेला, एकाकी व्यक्ति जो अविवाहित है संसार का उपकार कर सकता है, संसार का नेतृत्व भी कर सकता है, परन्तु वह सृष्टि प्रवाह में स्वानुरूप उत्पत्ति को बिना विवाह के सम्पन्न नहीं कर सकता। फलरहित वृक्ष केवल ईंधन के ही उपयोग का रह जाता है। इसी प्रकार से विवाह रहित व्यक्ति सन्तानहीन, फलरहित, संसार का उच्छेदक बन जाता है।

यज्ञों से ऋण मुक्ति

विवाह के पश्चात् भी जो केवल भोग एवं स्वार्थ की ही कामना से अपना जीवन व्यतीत करने की इच्छा करते हैं, वे अपने ऊपर

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

संसार के ऋणों को बढ़ाते जाते हैं। ऋणी व्यक्ति का जीवन दुःख-दायी होता जाता है। ऋण लेने वाले से ऋण को वापस लेने के लिए ऋणदाता आते हैं और अपना भाग माँगते हैं। देने पर अनेक प्रकार की कार्रवाई करते हैं और कोर्ट से डिक्रियाँ भी लाते हैं। एक का ऋण होता है, तो एक की डिक्री होती है। अनेकों का ऋण होता है, तो अनेकों की डिक्रियाँ आती हैं और ऋणी व्यक्ति उनसे दुःखी हो जाता है।

इसी प्रकार से सृष्टि के तत्त्वों तथा समस्त प्राणियों के हमारे ऊपर ऋण चढ़ते हैं, उनका चुकारा यज्ञ द्वारा ही किया जाता है। इस महान् विश्व की रचना में प्रत्येक वस्तु एवं प्राणी एक-दूसरे का पूरक होते हुए—एक दूसरे का सहयोगी एवं सहकारी होते हुए ही जीवन को सम्पन्न करता है। परन्तु मानवी रचना में समस्त संसार का ऋण सबसे अधिक चढ़ता है। क्योंकि यह सबसे अधिक ज्ञानी एवं प्रयत्नवान् है। संसार के प्राणियों की बुद्धि और प्रयत्न मनुष्य के आगे अत्यन्त हीन दशा के हैं। यह संसार का सब प्रकार से उपयोग लेने में पूर्ण समर्थ होने से विश्व का ऋण सबसे अधिक इसी पर चढ़ता है और उसे चुकाने के लिए इसे भूरग्नये स्वाहा। भुवर्वायवे स्वाहा। स्वरादित्याय स्वाहा। अर्थात् इस त्रिलोकी के लिए अपना भाग अवश्य देना होगा।

यज्ञ न करने से ऋणभार की वृद्धि

यदि यह अपना भाग इस प्रकार से राष्ट्र के लिए नहीं देगा और इस संसार का भोग ग्रहण करता जायेगा, तो ऋणदाता तत्त्व रोग, शोक, व्याधि, विपत्ति, ईति, भीति के रूप में डिक्रियाँ लेकर आ जाते हैं और वसूली शुरू हो जाती है तथा अन्य विविध योनियों में गति होकर उनका चुकारा करना ही पड़ता है।

जिस पर डिक्रियाँ होती हैं, उसके ऐश्वर्य का ह्रास होता है, वृद्धि नहीं होती। इसी प्रकार जिसे राष्ट्र की डिक्रियाँ वरुण के पाश के रूप में अपने बन्धनों से जकड़ लेती हैं, वह मानव आगामी जीवन में

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

मानव देह प्राप्त करने रूपी जो अभ्यातन होम-सतत उन्नति का क्रम है और जो जया होम—जय की भावना है उससे रहित हो जाता है। विवाह सम्बन्ध से मानव का क्रम प्रवाहित होता है, परन्तु यदि उसके साथ उस क्रम में अपने आत्मा को भी मानव देह प्राप्ति की पंक्ति में लगाना है, तो व्याहृति होम द्वारा विश्व राष्ट्र का ऋण चुकाना ही होगा, अन्यथा पशु पक्षियों की पंक्ति में प्रतीक्षा करनी होगी।

यज्ञ से बन्धन मुक्ति

इसी रहस्य का दर्शन वेदों द्वारा ज्ञात कर ऋषियों ने कहा—

ये ते शतं वरुण ये सहस्रं यज्ञियाः पाशा वितता महान्तः।
तेभिर्नो अद्य सवितोत विष्णुर्विश्वे मुंचन्तु मरुतः स्वर्काः॥

(कात्यायन)

हे वरुण! तेरे जो ये सैकड़ों और हजारों प्रकार के यज्ञ रूपी पाश इस विशाल विश्व राष्ट्र में फैले हुए हैं उनसे सविता देव यज्ञ, समस्त मरुद्गण और रश्मियाँ बन्धन मुक्त करें। इसी रहस्य को वेद ने निम्न शब्दों में प्रकट किया—

उदुत्तमंवरुणपाशमस्मदवाधमं विमध्यमं श्रथाय।
अथा वयमादित्यव्रते तवानागसो अदितये स्याम॥

(ऋ० मं० १। सू० २४। मं० १५)

हे वरुण! तुम्हारे जो उत्तम, मध्यम और अधम, स्थूल, सूक्ष्म एवं सूक्ष्मतर, स्थूल देहाश्रित, सूक्ष्म देहामिश्रत एवं अन्य जन्माश्रित बन्धन हैं, उनसे हम अविनाशी ईश्वर! तेरे यज्ञ रूपी व्रत में स्थित होकर अपराध रहित हो मुक्ति सुख के अधिकारी हों।

यज्ञ से गृहस्थ में प्रवेश

इसीलिए वेद ने कहा—

मा यज्ञं हिँ सिष्टम। (यजुः अ० ५। मं ३)

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

यज्ञ को कभी नष्ट मत करो। इस प्रकार यज्ञों द्वारा यज्ञ की विश्व कल्याणमयी भावना से वेद गृहस्थाश्रम में प्रवेश कराता है। गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने की इतनी क्रिया के पश्चात् इस दाम्पत्य सम्बन्ध पर विधि से प्रकाश पड़ता है और वर वधू का हाथ पकड़ कर कहता है—

वर की प्रतिज्ञा

गृभ्णामि ते सौभागत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्यथासः।
भगो अर्यमा सविता पुरन्धिर्मह्यं त्वाऽदुर्गार्हपत्याय देवाः॥

(ऋ० मं० १०। सू० ८५। मं० ३६)

हे स्त्री ! मैं ऐश्वर्ययुक्त सुसन्तानादि सौभाग्य की वृद्धि के लिए तेरे हाथ को ग्रहण करता हूँ। तू मुझ पति के साथ सुखपूर्वक जरा-वस्था को प्राप्त हो। इतना कहने के बाद वेद यह महत्त्वपूर्ण संकेत करता है कि हम दोनों जा इस गृहस्थाश्रम में प्रवेश कर रहे हैं और इस विवाह बन्धन में बँध रहे हैं, वह हम वासनाओं एवं इच्छाओं के वशीभूत होकर नहीं कर रहे हैं, अपितु राष्ट्र के संचालक ऐश्वर्य के देव भग, न्याय के देव अर्यमा, सब जगत् के उत्पत्तिकर्त्ता देव सविता और विविध प्रकार से विश्व को धारण करने वाले देव पुरन्धि तथा विवाह के समय उपस्थित सब विद्वान् लोग गृहस्थाश्रम कर्म के अनुष्ठान के लिये तुझ वधू को मुझ 'वर' को देते हैं।

इससे वेद यह प्रतिपादित कर रहा है कि विवाह कार्य राष्ट्र का एक प्रमुख कार्य है और राष्ट्र की विविध शक्तियों द्वारा वह सम्पन्न होता है। इसी प्रकार प्रतिज्ञा के और जो मन्त्र वर उच्चारित करता है, उनमें भी विश्व की शक्तियों से अपनी समृद्धि की कामना बताई गई है—

इन्द्राग्नी द्यावापृथिवी मातरिश्वा मित्रावरुणा भगो अश्विनोभा।
बृहस्पतिर्मरुतो ब्रह्म सोम इमां नारीं प्रजया वर्धयन्तु॥

(अथर्व कां० १४। सूक्त १। मं० ५६)

इन्द्र और अग्नि, द्युलोक और पृथिवी, अन्तरिक्षस्थ वायु, मित्र

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

और वरुण, दोनों अश्विनी, बृहस्पति, मरुद्गण, ब्रह्म, और सोम आदि इस विराट् ब्रह्माण्ड की शक्तियाँ इस नारी को प्रजा से बंढ़ायें। इस प्रकार वर-वधू की समृद्धि की कामना की जाती है।

इस मन्त्र से स्पष्ट है कि मनुष्य की उत्पत्ति तथा मनुष्य की समृद्धि में अनेक शक्तियों का सम्मिश्रण है। वर्त्तमान विज्ञान वीर्य में निवास करने वाले विशिष्ट प्रकार के अणुओं को उत्पत्ति का कारण मानता है। परन्तु यह तो भौतिक स्थूल बीज मात्र एक-एक लघु परिधि है, जिसमें उपरोक्त शक्तियों का सम्मिश्रण है। इस सम्मिश्रण को भौतिक विज्ञान अभी देखने में असमर्थ है। वेद का मन्त्र बताता है कि ये भी शक्तियाँ इसके पीछे हैं। अर्थात् जब मानव की उत्पत्ति विश्व से है, तो मानव भी विश्व का ही है और जब वह विवाह द्वारा अपनी पूरक शक्ति को प्राप्त कर पूर्ण इकाई बनने जा रहा है, तो उसमें सर्वप्रथम यह राष्ट्रीय भावना होनी ही चाहिए।

(६) लाजा होम

प्रतिज्ञा के मन्त्रों के उच्चारण के बाद छठा होम लाजा होम करना होता है। इसके द्वारा वधू पति की समृद्धि एवं कुलवृद्धि तथा पृथक् न होने की कामना करती है, जिनका दर्शन निम्न मन्त्र वाक्यों में होता है—

संचतु मा पतेः—आयुष्मानस्तु मे पतिः—एधन्तां ज्ञातयो मम-समृद्धि करणं तव।

पति से मेरा वियोग न हो—मेरा पति दीर्घायु हो—मेरी ज्ञाति के लोग बढ़ें—तुझ पति की समृद्धि के लिए यह लाजा होम कर रही हूँ—ऐसी शुभ भावना इस सम्बन्ध में पति-पत्नी की रहती है। इसके विपरीत वैदिक मतावलम्बियों के अतिरिक्त जनों के दाम्पत्य सम्बन्ध में दोनों के पृथक् होने की भावना पहले से ही होती है तथा कुटुम्ब वृद्धि की भावना या सन्तति की भावना नहीं होती। सन्तति उनके भोग में बाधक है। आज का गृहस्थ जीवन आदर्शहीन

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

है। वेद के वैवाहिक गृहस्थ आदर्श पर चलकर वह बहुत कुछ सीख सकता है और जीवन को उन्नत बनाकर राष्ट्र का उत्थान कर सकता है।

(७) प्राजापत्य होम

सातवाँ एवं अन्तिम होम विवाह की पूर्व विधि में प्राजापत्य होम है, जिसके पश्चात् पूर्व विधि समाप्त हो जाती है। पूर्व विधि के इस अन्तिम होम के पश्चात् ग्रन्थिबंधन और सप्तपदी की क्रिया होती है। इस विधि से विवाह सम्बन्ध वैध और मान्य हो जाता है। प्राजापत्य होम विवाह में इसलिए भी करना आवश्यक है कि यह प्रजापति का ही व्रत है, यह प्रजापति का ही संकल्प है, जो विवाह रूप में प्रकट होकर दोनों को एक सूत्र में एक व्रत-नियम में बाँध रहा है।

सप्तपदी

इन सात होमों में जिस आदर्श को गृहस्थ जीवन में स्थापित करने का प्रयत्न किया गया है, वह अन्यत्र कहीं दृष्टिगोचर नहीं होगा। सप्तपदी की क्रिया जीवन का एक कार्यक्रम प्रस्तुत करती है। सप्तपदी के समय वर वधू को वेदी के ईशान कोण की ओर क्रमशः एक-एक पद चलाता है।

विश्व की सात परिधियाँ हैं जैसा कि—सप्तास्यासन् परिधयः। (यजुः, अ० ३१। मं० १५) में कहा है। मानो वर इस विवाह सम्बन्ध से वधू को विश्व की सात परिधियों को क्रमशः पार ले जाते हुए स्वयं भी इस भवसागर से पार हो जाता है। स्त्री के दाहिने कन्धे पर हाथ रखकर वह उसे आगे चलाता हुआ उसका नेता और अनुगन्ता भी बनकर चलता है। अर्थात् वर यह दर्शाता है कि इस संसार में मेरा आश्रय यह स्त्री है। इसके आश्रय से विश्व की सातों परिधियों को मार सकूंगा। सातों लोकों को प्राप्त करूँगा और इन

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सातों परिधियों और सातों लोकों के परे जो परम पद, आनन्द का परम धाम, मोक्ष स्वरूप परमात्मा है, उसे भी प्राप्त करूँगा। यह गृहस्थ आश्रम परमात्मा की प्राप्ति और मोक्ष पद प्राप्त करने का सोपान है।

सप्तपदी करते समय वर क्रमशः इन मन्त्रों से एक-एक पग वधू को आगे बढ़ाता है :—

इषे एकपदी भव···
ऊर्ज्जे द्विपदी भव···
रायस्पोषाय त्रिपदी भव···
मयोभवाय चतुष्पदी भव···
प्रजाभ्यः पंचपदी भव···
ऋतुभ्यः षट्पदी भव···
सखे सप्तपदी भव···

गृहस्थ जीवन में प्रधान रूप से सात प्रकार का व्यवहार करना होगा, जिसमें **पहला कर्त्तव्य**—इषे—अर्थात् अन्न के लिए करना होगा। गृहस्थ में प्रवेश करने पर घर को अन्न से—भोजनादि की सामग्री से पूर्ण रखने का सर्वप्रथम ध्यान रखना होगा। वह गृहस्थ जीवन कभी सुखदायी नहीं होगा, जिसके पास या घर में अन्न न हो अथवा अन्न उत्पादन या अन्न क्रय की शक्ति न हो।

दूसरा पग गृहस्थ में—ऊर्ज्जे—बल सम्पादन का होना चाहिए। जो अन्न हमने अपने घर में संगृहीत किया है, उसे भोजन द्वारा इस प्रकार बनाया जाये कि वह बलवर्धक हो। उत्तम अन्न यदि उचित रीति से रुचिपूर्ण प्रस्तुत न किया जावे, तो वह बल को क्षीण करने वाला भी हो जाता है। अतः अन्न को संग्रह करते समय यह ध्यान रखना गृहस्थ का कार्य है कि यह अन्न बल को बढ़ाने वाला है भी या नहीं और पत्नी का भी कर्त्तव्य है कि वह उत्तम अन्न रुचिपूर्ण ढंग से प्रस्तुत करे, जिससे वह बलवर्धक होवे।

यजुर्वेद के प्रथम मन्त्र में ही—इषे त्वा, ऊर्जे त्वा—कहा है। अर्थात् जीवन की यही प्रथम महान् आवश्यकताएँ हैं अन्न और बल प्राप्ति की। जिसके पास अन्न और बल दोनों हैं, वह जीवन संघर्ष

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

 Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

में विजयी होगा। इष और ऊर्ज से जीवन की शरद् ऋतु बनती है जैसा कि वेद में कहा है—

इषश्चोर्जश्च शारदावृत्।

(यजु: अ० १४। मं १६)

इष और ऊर्ज से शरद् ऋतु का निर्माण होता है। अतः जो जीवन में इष और ऊर्ज से सम्पन्न होगा, वही

पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतम् अदीनाः स्याम शरदः शतम्—(यजु: अ० ३६। मं० २४)

जीवन में सौ शरद् वर्षों तक देख सकेगा। वही सौ शरद् ऋतुओं तक जीवन यापन कर सकेगा और अपना शतायु पर्यन्त जीवन अदीन होकर—पराश्रित न होकर स्वयं अपनी सामर्थ्य से स्वतन्त्रतापूर्वक व्यतीत कर सकेगा।

अन्न और बल गृहस्थ के पास होने पर तीसरा प्रयत्न—रायस्पोषाय—धन एवं ज्ञान की पुष्टि के लिए होना चाहिए। धन एवं ज्ञान रहित गृहस्थ के अन्न एवं बल का उचित उपयोग वह स्वयं नहीं कर सकता और वह दूसरों के आश्रित हो जाता है, अतः गृहस्थ में अन्न एवं बल के साथ धन की भी आवश्यकता रहती है। जो पुरुष इतना उपार्जन नहीं करते कि समय पर आपत्ति या आवश्यकता पड़ने पर धन व्यय कर सकें, उनका जीवन कष्टप्रद हो जाता है। जो पत्नी अपने पति की कमाई में से कुछ भी बचा कर नहीं रखती और सब कुछ खर्च कर देती है, वह अपने गृहस्थ जीवन को सुखी नहीं रख सकती। अतः धन की पुष्टि का भी ध्यान गृहस्थ को रखना चाहिए। अपने पास संगृहीत राशि बड़ा भारी बल देती है। जिसके पास धन होता है, उसकी प्रत्येक बात में बल होता है।

चौथा पग गृहस्थ में—मयो भवाय—सुख के लिए होना चाहिए। जिस गृहस्थ के पास अन्न, बल, धनादि हों, उसे यदि इनके द्वारा सुख प्राप्ति की विधि ज्ञात न हो या इनका उपयोग केवल संग्रह मात्र के लिए हो और अपने सुख के लिए उपयोग न करे, तो इनका क्या लाभ। जीवन में सुख प्राप्ति होनी चाहिए। दुःखित जीवन किस काम का ? प्रत्येक प्राणी सुख की कामना करता है, अतः

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

गृहस्थ जीवन को सुखी बनाना चाहिए। घर में सुख के साधन होने चाहिए।

पाँचवाँ कर्त्तव्य—गृहस्थ का प्रजाभ्यः—प्रजा के लिए होना चाहिये। जब घर में अन्न, शरीर में बल, सम्पत्ति, ऐश्वर्य, धन एवं सुख हो, ऐसी अवस्था में सन्तान भी घर में होनी चाहिए। अन्न, बल, धन, सुखहीन गृहस्थ को यदि सन्तान प्राप्ति हो, तो उस सन्तान को भी दुःख होगा और दुःखी सन्तान को देखकर गृहस्थ को भी दुःख की वृद्धि होगी। अतः गृहस्थ को सन्तान की प्राप्ति के प्रयत्नों से पहले ही अपनी स्थिति अन्न, बल और धन से समृद्ध कर लेनी चाहिए।

छठा प्रयत्न—ऋतुभ्यः—ऋतुओं के लिए करना चाहिए। ऋतु के अनुसार बर्ताव, रहन-सहन, भोजन, पान आदि का ज्ञान आना चाहिए। यदि यह ज्ञान नहीं होगा तो अपना तथा अपनी सन्तान का जीवन रोगी एवं कष्टप्रद हो जायेगा। इसके अतिरिक्त जिस प्रकार वर्ष में किसी ऋतु में शीत है तो किसी में उसके विपरीत भयंकर गरमी है, किसी में वर्षा है तो किसी में अवर्षण है, इसी प्रकार जीवन में अनेक उतार-चढ़ाव, सुख-दुःख और रोग-शोक के आते हैं, उनमें धैर्यपूर्वक किस प्रकार व्यवहार करना है, यह भी ज्ञात होना चाहिए। तभी जीवन सफल है।

सातवाँ प्रयत्न—घर में मित्रता का व्यवहार होना चाहिए। जिस प्रकार दो मित्रों का परस्पर सम्बन्ध प्रेमपूर्ण—एक हृदय वाला—एक-दूसरे की बात को मानने वाला होता है। इसीलिए विवाह के प्रारंभ में—

समापो हृदयानि नौ। (ऋ० मं० १०। सू० ८५। मं० ४७)

हम दोनों के हृदय दो जलों के समान एक हैं, यह घोषणा वर-वधू करते हैं और सप्तपदी के बाद विवाह की पूर्वविधि पूर्ण होने पर—**मम व्रते ते हृदयं दधामि**—की घोषणा करते हैं। गृहस्थ जीवन परिवार एवं समाज का आधारभूत है अतः गृहस्थ निर्माण का आधारभूत विवाह कार्य वैदिक दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

—:o:—

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi